अमर उजाला
नई दिल्ली ■ सोमवार, 8 अप्रैल 2024

प्रवाह

महोत्सव विश्वास का 75
निर्भीक पत्रकारिता का आठवां दशक
स्थापना वर्ष : 1948

ऐसा कोई व्यक्ति नहीं है, जिसे प्यार ठीक नहीं कर सकता; ऐसी कोई आत्मा नहीं है, जिसे प्रेम बचा न सके। -कार्लोस सैन्टाना

पिछले कुछ समय से पश्चिम बंगाल में केंद्रीय एजेंसियों के अधिकारियों का जैसा हिंसक विरोध दिखा है, वह राज्य की कानून-व्यवस्था पर सवाल तो उठाता ही है, केंद्र व राज्य के संबंधों की एक गलत मिसाल पेश करता है, जो संघवाद के भी प्रतिकूल है।

किस राह पर बंगाल

संदेशखाली में राशन घोटाले में आरोपित निलंबित तृणमूल नेता शाहजहां शेख के घर छापेमारी के लिए पहुंची प्रवर्तन निदेशालय (ईडी) की टीम पर हुए हमले के करीब तीन महीने बाद अब पश्चिम बंगाल के ही पूर्वी मेदिनीपुर जिले में वर्ष 2022 में हुए एक बम धमाके की जांच करने गई राष्ट्रीय जांच एजेंसी (एनआईए) की टीम पर स्थानीय भीड़ ने जिस तरह हमला किया, वह राज्य में कानून-व्यवस्था की असल तस्वीर ही पेश करता है। उल्लेखनीय है कि वर्ष 2022 में दिसंबर के तीसरे दिन भूपतिनगर में तृणमूल कांग्रेस के स्थानीय नेता राजकुमार मन्ना के घर पर धमाका हुआ था, जिसमें मन्ना समेत कुल तीन लोगों की मौत हुई थी। मार्च, 2023 में कलकत्ता उच्च न्यायालय द्वारा एनआईए को घटना की जांच के आदेश देने के बाद से एनआईए ने आठ तृणमूल कार्यकर्ताओं और स्थानीय नेताओं को समन भेजे, लेकिन वे लगातार इसे ठुकराते रहे। इस मामले में एनआईए की टीम पर हमला तब हुआ, जब वह विस्फोट के दो मुख्य आरोपियों को हिरासत में ले रही थी। लोकसभा चुनाव से पहले केंद्रीय एजेंसियों की सक्रियता पर सवाल उठाते हुए मुख्यमंत्री ममता बनर्जी बेशक अपनी सफाई में दलीलें दे रही हैं, लेकिन कोई भी तर्क हिंसा को जायज नहीं ठहरा सकता। फिर, एनआईए की टीम तो अदालत के आदेश का ही पालन कर रही थी। ममता कह रही हैं कि एनआईए की टीम ने आधी रात को छापे क्यों मारे। राजनीतिक आका के इशारे पर पुलिस ने तो केंद्रीय एजेंसी के खिलाफ प्राथमिकी तक दर्ज कर दी, जिससे यही पता चलता है कि दूसरे दल की सरकार होने पर राज्य में केंद्र का विरोध एक अलग स्तर पर चला गया है। जब मुख्यमंत्री खुद समय-समय पर भड़काऊ बयान देती हों, तो समर्थकों के लिए उनका संदेश साफ होता है। पहले चरण के मतदान के ठीक दो दिन पहले रामनवमी पर दंगे भड़कने की चेतावनी वह जिस अंदाज में चुनावी सभाओं में दे रही हैं, उसे अव्यवस्था को आमंत्रण देना क्यों नहीं समझा जाना चाहिए? अगर,

बंगाल में राजनीतिक हिंसा सामान्य समझी जाती है, तो यह राज्य पुलिस की अकर्मण्यता का ही नतीजा है। इसी वजह से वह आज शायद देश का पहला राज्य होगा, जहां केंद्रीय अधिकारियों की सुरक्षा के लिए केंद्रीय बलों की नियुक्ति करनी पड़ रही है। इसके बावजूद अगर वे सुरक्षित नहीं हैं, तो यह राज्य में आपराधिक तत्वों की बढ़ती हिम्मत को ही दिखाता है, जिस पर कड़ी कार्रवाई करने की जरूरत है। चुनावी माहौल में सियासी आरोप-प्रत्यारोप अपनी जगह हैं, पर कुछ समय से पश्चिम बंगाल में जैसा 'केंद्र-विरोधी' माहौल बना है, वह संघवाद के प्रतिकूल तो है ही, एक गलत मिसाल भी पेश करता है।

अंगों के कारोबार की काली दुनिया

चिकित्सा पर्यटन एवं अंग प्रत्यारोपण का दूसरा पहलू अंग व्यापार का एक समृद्ध कारोबार है, जिसे रोकने के लिए मौजूदा कानून को मजबूती से लागू करना होगा और चिकित्सा पेशे से जुड़े लोगों को भी ईमानदारी एवं प्रतिबद्धता दिखानी होगी।

डॉ. चंद्रकांत लहारिया
वरिष्ठ चिकित्सक

मानव ऊतक प्रत्यारोपण का इतिहास कम से कम 140 वर्ष या संभवतः इससे भी पुराना है। दुनिया का पहला सफल मानव अंग (किडनी) प्रत्यारोपण 70 साल पहले हुआ था। तब से मानव यकृत, हृदय, फेफड़े, अग्न्याशय और आंत का सफल प्रत्यारोपण किया गया है। किडनी प्रत्यारोपण सहित इन छह को जीवन रक्षक माना जाता है। आज चिकित्सा विज्ञान की प्रगति के कारण एक व्यक्ति से करीब 37 अंगों और ऊतकों को निकालकर दूसरे मनुष्य में प्रत्यारोपित किया जा सकता है। भारत में पहला सफल मानव किडनी प्रत्यारोपण दिसंबर, 1971 में क्रिश्चियन मेडिकल कॉलेज, वेल्लोर में किया गया था। सबसे पहले किडनी का ही प्रत्यारोपण हुआ था और आज भी सबसे ज्यादा इसी का प्रत्यारोपण होता है। इसके बाद यकृत और हृदय का स्थान है। हालांकि, जरूरत से काफी कम अंग प्रत्यारोपण होते हैं।

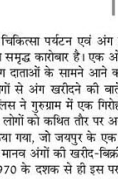

अंग प्रत्यारोपण चिकित्सा क्षेत्र की उन्नति का प्रमाण है। दुनिया के बाकी हिस्सों की तुलना में भारत में अंग प्रत्यारोपण विदेशियों के लिए अपेक्षाकृत सस्ता है। दक्षिण एशिया, मध्य एशिया और अफ्रीका के कई देश प्रत्यारोपण सुविधा विकसित करने में सक्षम नहीं हैं। इसलिए भारत में इलाज कराने के साथ अंग प्रत्यारोपण के लिए बड़ी संख्या में मरीज आते हैं।

चिकित्सा पर्यटन एवं अंग प्रत्यारोपण का दूसरा पहलू अंग व्यापार का समृद्ध कारोबार है। एक ओर जहां जीवन बचाने के लिए परोपकारी अंग दाताओं के सामने आने की खबरें आती हैं, वहीं दूसरी ओर गरीब लोगों से अंग खरीदने की बातें भी सामने आती हैं। अभी हाल ही में पुलिस ने गुरुग्राम में एक गिरोह का भंडाफोड़ किया, जिसमें बांग्लादेश के लोगों को कथित तौर पर अवैध किडनी प्रत्यारोपण के लिए गिरफ्तार किया गया, जो जयपुर के एक अस्पताल में करवाया गया था।

मानव अंगों की खरीद-बिक्री एक पुरानी और वैश्विक परिघटना है। 1970 के दशक से ही इस पर अंकुश लगाने की जरूरत सभी देशों में

महसूस की जा रही है। 1980 और 1990 के दशक के मध्य में ज्यादातर देशों ने अंग प्रत्यारोपण के लिए कानूनी ढांचा तैयार कर लिया। भारत सहित ज्यादातर देशों में इसे गैर-कानूनी बनाया गया है। पैसे लेकर अंगदान करने को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर गैर-कानूनी माने जाने के बावजूद अवैध अंग व्यापार जारी है। नेपाल, भूटान, इंडोनेशिया और भारत सहित दक्षिण एशिया के कई देशों में अवैध किडनी बिक्री का लंबा इतिहास है। पीड़ितों को अक्सर विदेश में उच्च वेतन के वादे कर काम का लालच दिया जाता है, जिसके बाद वे खुद को कर्ज में फंसा पाते और अंग बेचने के लिए मजबूर हो जाते हैं। अंग तस्करी के मुद्दे से निपटने और अंगों के उचित आवंटन को सुनिश्चित करने के लिए भारत सरकार ने मानव अंगों और ऊतकों का प्रत्यारोपण अधिनियम, 1994 बनाया। यह कानून चिकित्सीय उद्देश्यों के लिए मानव अंगों और ऊतकों को हटाने, भंडारण और प्रत्यारोपण को नियंत्रित करता है और उनके व्यावसायिक लेन-देन पर भी रोक लगाता है। इस अधिनियम की धारा 19 के अनुसार, वाणिज्यिक लेन-देन में शामिल कोई भी व्यक्ति यदि-अंगों के लिए पैसे देने या पैसे के लिए अंगों की आपूर्ति करने की पेशकश करता है, इसके लिए पहल/बातचीत/विज्ञापन करता है, अंगों की आपूर्ति करने वाले व्यक्ति की तलाश करता, और झूठे दस्तावेज तैयार करने में सहयोग करता है, तो उसे 10 साल तक की जेल और एक करोड़ रुपये तक का जुर्माना हो सकता है।

हालांकि इसमें चुनौतियां हैं। जब अंगदाता और प्राप्तकर्ता की जोड़ी देशों की सीमा पार करती है, तो सबसे बड़ी चुनौती उनके बीच संबंध स्थापित करने और भुगतान तथा स्वैच्छिक दान में अंतर करने में आती है। दूतावासों से अपेक्षा की जाती है कि वे जबर्दस्ती और भुगतान से इन्कार का प्रमाणपत्र जारी करें, लेकिन अनुभव बताते हैं कि वे हमेशा उचित प्रक्रिया का पालन नहीं करते। भारत में इसकी जांच की अगली जिम्मेदारी अस्पतालों की विशेष समितियों पर होती हैं, जिनके पास इस प्रकार के संदेहास्पद प्रत्यारोपण को रद्द करने का अधिकार है। जब भारत में किडनी की मांग बढ़ती है, तो गरीब व्यक्ति या पड़ोसी देश तस्करों के लिए शिकारगाह बन जाता है। अंग तस्करी की अंतरराष्ट्रीय प्रकृति अभियोजन को चुनौतीपूर्ण बनाती है, अपर्याप्त कानून प्रवर्तन के कारण कानूनी दान और अवैध बिक्री के बीच बारीक अंतर को स्पष्ट करना और भी जटिल हो जाता है।

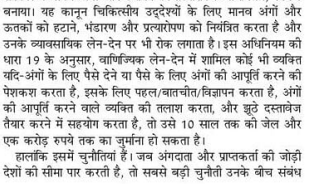

दूसरी चुनौती राष्ट्रीय स्तर पर है। इससे संबंधित कानून को पूरे भारत में समान रूप से लागू नहीं किया गया है, क्योंकि स्वास्थ्य राज्य सूची का विषय है। इससे देश में अवैध अंग व्यापार के लिए गुंजाइश पैदा होती है। पूरे भारत में एक समान कानून की आवश्यकता है, जिसे संसद द्वारा संविधान के अनुच्छेद 249 और 252 को लागू करके किया जा सकता है। तो क्या किया जाना चाहिए? अधिकांश विदेशी मरीजों की भर्ती एजेंटों के माध्यम से होती है, जो यात्रा और कागजी कार्रवाई पूरा करते हैं। संबंधित देशों के कानूनों से सामंजस्य बनाने की पहल होनी चाहिए, ताकि एक देश के अपराधी पर दूसरे देश में मुकदमा चलाया जा सके। अपराध जांच में सहायता की एक प्रणाली स्थापित करके अवैध अंग व्यापार से प्रभावी ढंग से निपटा जा सकता है। दूसरा, अंग तस्करी में शामिल मिलीभगत को पकड़ने के लिए चिकित्सा गतिविधियों में पारदर्शिता बढ़ाने की जरूरत है। तीसरा, मृत्यु के बाद अंगदान प्रत्यारोपण का भविष्य है। भारत में छह में से केवल एक अंगदान मृत दाताओं से होता है। इसके बारे में जन जागरूकता बढ़ाने की आवश्यकता है।

भारत में अंग व्यापार और अंगों का अंतर-देशीय व्यापार एक उभरती हुई चुनौती है। यदि इससे प्रभावी ढंग से नहीं निपटा गया, तो चिकित्सा पर्यटन और स्वास्थ्य क्षेत्र में भारत की छवि खराब हो सकती है। मौजूदा कानून को मजबूती से लागू करने के लिए पड़ोसी देशों की कानून प्रवर्तन एजेंसियों से बेहतर सहयोग की आवश्यकता है। चिकित्सा पेशे से जुड़े लोग और डॉक्टरों को भी इस तरह के अवैध कारोबार को रोकने के लिए ईमानदारी और प्रतिबद्धता दिखानी होगी। अंग और ऊतक प्रत्यारोपण एक नेक कार्य है और सबको इसका दुरुपयोग रोकने के लिए सहयोग करना चाहिए।

जीवन धारा

चतुरसेन शास्त्री

धर्मात्मा वे हैं, जो संसार में रहकर, संसार की यातनाओं का नाश करके, संसार के लिए सुख, कल्याण, शांति और आनंद के मार्ग का निर्माण करते हुए अपनी आत्मा के कल्याण के लिए मुक्ति के साधन भी ढूंढ लेते हैं।

परोपकार में जो आनंद है, वह भोग में नहीं

__सर्व-साधारण__ संप्रदायों को धर्म के नाम से पुकारते हैं। भारत धर्म-प्रधान देश है। चिरकाल से यहां धर्म का आदर होता आया है-बड़ी-से-बड़ी शक्तियां भी धर्म के आगे सिर झुकाती चली आई हैं। यह एक साधारण बात है कि जिस वस्तु की ज्यादा खपत होती है, उसकी दुकानें भी बहुत-सी खुल जाती हैं और नकली चीजें बहुत बनने लगती हैं। भारत में धर्म की भी वही दशा है। घर के धनी महाशय जब भोजन नाक तक डाट चुकते हैं और थाली में जो जूठन दाल-भात बचा रहता है, तब कहा जाता है कि यह किसी भूखे को दे दो, धर्म होगा। कपड़े पहनते-पहनते जब नौकरों के भी काम के नहीं रहते, तब कहा जाता है किसी नंगे को दे दो, धर्म होगा। इसी भारत के जब दिन थे और भारत में बड़प्पन था, तब इसी धर्म के नाम पर राजाओं ने राज्य त्यागकर चांडाल की सेवा की थी, अपना मांस काटकर गिद्ध को खिलाया था, अपने पुत्र के सिर पर आरा चलाया था। वही धर्म इस कलयुग में इतना सस्ता हो गया कि जूठे टुकड़ों और फटे चिथड़ों के एवज चाहे जो उसे मोल ले सकता है। इससे अधिक लज्जा की बात क्या होगी?

धर्म का प्रश्न बहुत भ्रांत है। श्रीकृष्ण गीता में कहते हैं 'धर्म क्या है और क्या नहीं है, इस विषय में अच्छों-अच्छों की अकल चकरा जाती है।'

भूखों को अन्न, प्यासों को जल, नंगों को वस्त्र, रोगी को औषधि, असहाय को सहायता देना-यह हमारे मनुष्य-योनि का साधारण कर्तव्य है। हम किसी पर कुछ अहसान नहीं कर रहे हैं, न वह धर्म ही है। मनुस्मृति कहती है कि धैर्य, क्षमा, दया, अस्तेय, शौच, इंद्रियनिग्रह, बुद्धि, विद्या,अक्रोध, सत्य ये दस धर्म के लक्षण हैं। मैं कहूंगा कि ये भी धर्म के लक्षण नहीं हैं। ये मनुष्यत्व के चिह्न हैं अथवा इन्हें धर्म की ओर ले जाने वाले मार्ग कह सकते हैं-यह वास्तव में धर्म की सच्ची व्याख्या नहीं हुई।

क्या सर्वत्र अहिंसा धर्म है? यदि यही बात है, तो कोई उत्तर दे कि एक सिपाही युद्ध में हजारों मनुष्यों को मारकर भी हत्यारा नहीं कहलाता और मैं चींटी मार देने पर भी हत्यारा और पापी कहा जाऊंगा, यह क्यों? फिर तो अपराधी को फांसी देने वाला जज आदि सभी पापी हो जाएंगे। परंतु नहीं, कारण और अर्थ देखने पर कभी हत्या भी धर्म है और कभी अधर्म। धर्म सदा पापी का नाश और धर्मात्माओं की रक्षा करता है। धर्मात्मा वे हैं, जो संसार में रहकर, संसार की यातनाओं का नाश करके, संसार के लिए सुख, कल्याण, शांति और आनंद के मार्ग का निर्माण करते हुए अपनी आत्मा के कल्याण के लिए मुक्ति के साधन भी ढूंढ़ लेते हैं। संसार क्षण-भंगुर है और मनुष्य अनाचार से कभी सुखी नहीं हुआ। परोपकार के लिए शरीर की बोटियां कटाने में जो आनंद आता है, वह आनंद स्वार्थ के लिए किसी भी भोग को भोगने में नहीं आता है। जीवित जातियां वहीं हैं, जो आधुनिकता का प्रतिनिधित्व करती हैं; अपने आज के जीवन में जीती हैं।

अभ्युदय की प्राप्ति...

सूत्र

जिस काम से अभ्युदय और निश्रेयस की सिद्धि हो, वह धर्म है। अभ्युदय का संक्षिप्त किंतु सच्चा अर्थ है ऐहिलौकिक सर्वोच्च सुख और वह सुख यही हो सकता है कि मनुष्य के सामाजिक और व्यक्तिगत अधिकारों की स्वाधीनता और क्षमता की प्राप्ति। निश्रेयस का अर्थ है मोक्ष अर्थात पारलौकिक सर्वोच्च आनंद, जो कि अभ्युदय की पूर्ण प्राप्ति कर जीवन के निर्बंध होने के कारण होगा।

दूसरा पहलू

हस्तलिखित पत्रिका *जुगनू* की शुरुआत नसीमा के मार्गदर्शन में 2004 में हुई थी, जिसे फोटोकॉपी करवाकर बांटा जाता था।

खुद अपनी आवाज बनते सेक्स वर्करों के बच्चे

***आओ** कर लो नंबर याद, जब करे कोई महिलाओं पर अत्याचार, तब लगाओ 1090 मेरे यार।* ये पंक्तियां किसी सरकारी या गैर-सरकारी संगठनों के किसी अभियान का स्लोगन नहीं है, बल्कि ये 'हिफाजत के नंबर' शीर्षक कविता की पंक्तियां हैं, जिन्हें हस्तलिखित पत्रिका *जुगनू* के लिए लिखा है शाइस्ता परवीन ने। शाइस्ता बिहार के मुजफ्फरपुर स्थित रेड लाइट एरिया चतुर्भुज स्थान में रहती हैं, जिसे सेक्स वर्करों का इलाका कहा जाता है। लेकिन इसी काली अंधेरी गलियों से कुछ ऐसी लड़कियां भी निकली हैं, जिन्होंने बदलाव की बयार बहाने की जिद ठान रखी है। सबसे पहले संस्था 'परचम' के माध्यम से नसीमा खातून निकलीं, जिन्होंने वैश्विक स्तर पर अपनी मजबूत उपस्थिति दर्ज कराई है। सेक्स वर्करों के हितों की आवाज उठाने वाली नसीमा को राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग ने अपने एडवाइजरी बोर्ड का सदस्य बनाया है।

संतोष सारंग

बीच में नसीमा के ब्याह कर ससुराल चले जाने के बाद यह पत्रिका बंद हो गई थी, जिसे 2021 में फिर से कुछ नई लड़कियों को जोड़कर नसीमा ने प्रकाशित करना शुरु कर दिया है।

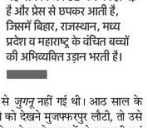

शाइस्ता बताती हैं कि इस पत्रिका की शुरुआत नसीमा के मार्गदर्शन में 2004 में हुई थी। शुरू में इस पत्रिका को फोटोकॉपी करवाकर बांटा जाता था। तीन महीने के अंतराल पर निकलने वाली यह पत्रिका चार पेज से शुरू हुई थी, लेकिन जन सहयोग से आर्थिक संसाधन जुटाकर आज यह 36 पेज की हो गई है, जो अब प्रेस से छपती है। शाइस्ता के अनुसार, पत्रिका में लड़कियों की अपनी कहानियां और समाज की तल्ख हकीकत होती थी, जिसमें व्याकरण की काफी गलतियां होती थीं। इसी जिद व जुनून से यहां की लड़कियों की यह पत्रकारीय यात्रा *जुगनू* के रूप में 2012 तक चली।

यह पत्रिका अब 32 पेज की हो गई है और प्रेस से छपकर आती है, जिसमें बिहार, राजस्थान, मध्य प्रदेश व महाराष्ट्र के वंचित बच्चों की अभिव्यक्ति उड़ान भरती है।

इस बीच नसीमा की शादी हो गई और वह राजस्थान अपने ससुराल चली गई, लेकिन मन से *जुगनू* नहीं गई थी। आठ साल के लंबे अंतराल के बाद जब वह अपनी बीमार दादी को देखने मुजफ्फरपुर लौटी, तो उसे फिर से पत्रिका निकालने का ख्याल आया। नसीमा ने पुराने सदस्यों से बात की एवं कुछ नई लड़कियों को जोड़कर 2021 में फिर से पत्रिका शुरू कर दी। अब इसमें केवल मुजफ्फरपुर ही नहीं, बल्कि तीन अन्य राज्यों-राजस्थान, मध्य प्रदेश व महाराष्ट्र के समाज की मुख्यधारा से पूरी तरह कटे, वंचित समुदाय के लड़के-लड़कियों की अभिव्यक्ति को उड़ान भरने का अवसर मिलने लगा है। *जुगूनू* का टैगलाइन है- हाशिये के वंचितों की आवाज। बाड़मेर के जिला कलेक्टर और एसपी को जब *जुगनू* का अंक सौंपा गया, तो वे चकित रह गए कि कैसे इस वंचित समुदाय के बच्चे हस्तलिखित पत्रिका छापकर अपनी आवाज खुद बन रहे हैं! *(चरखा फीचर)*

आंकड़े

वन आवरण में वृद्धि

वर्ष 2000 से 2020 के बीच वैश्विक स्तर पर 13.1 करोड़ हेक्टेयर क्षेत्र में वन आवरण बढ़ा है, जिसमें सबसे ज्यादा वृद्धि रूस में हुई है।

(आंकड़े हेक्टेयर में) | स्रोत : WRI

जिसने दुर्गुणों का त्याग कर खुद को भगवान के सामने अर्पित कर दिया, वह स्वयं भगवान के समान पवित्र बन गया।

भगवान को पुकारो

अंतर्यात्रा
शिव कुमार गोयल

स्वामी रामकृष्ण परमहंस ने एक दिन श्रद्धालुओं को उपदेश देते हुए कहा, प्रत्येक प्राणी में ईश्वर के दर्शन करना चाहिए। अपने हृदय को मंदिर के समान पवित्र व स्वच्छ रखना चाहिए। एक गृहस्थ ने परमहंस जी से विनम्रता से पूछा, महाराज, प्रत्येक प्राणी में ईश्वर का निवास कैसे हो सकता है? मैं सांसारिक व्यक्ति हूं, जाने-अनजाने पाप होते रहते हैं। कोई मुझमें ईश्वर देखने लगे, तो यह कैसे उचित होगा?

स्वामी जी ने कहा, अपने अंदर पाप ही क्यों देखते हो? क्या सांसारिक व्यक्तियों पर भगवान की कृपा नहीं होती? हमारे देश में ऐसे अनेक गृहस्थ हुए हैं, जिन्होंने पारिवारिक कर्तव्यों का पालन करते हुए सदाचार का जीवन बिताया है। जिसने दुर्गुणों का त्याग कर खुद को भगवान के सामने अर्पित कर दिया, वह स्वयं भगवान के समान पवित्र बन गया।

स्वामी जी ने आगे कहा, अबोध शिशु जब रोता है, तो मां दौड़कर बालक को गोद में उठा लेती है। वह यह नहीं देखती कि बालक गंदा है। भगवान तो माताओं की भी माता हैं। यदि भक्त सच्चे हृदय से पुकारे, तो वे दौड़े चले आते हैं। शर्त यही है कि शुद्ध हृदय से प्रार्थना करनी चाहिए। प्राणी मात्र के प्रति प्रेम पनपने लगे, तो समझो कि तुम भक्ति के पथ पर बढ़ने लगे हो।

(अमर उजाला आर्काइव से)

अमर उजाला

पुराने पन्नों से — 31 जनवरी, 1955

पश्चिम जर्मनी में एकीकरण का विरोध

प० जर्मनी में पेरिस समझौते का विरोध

पश्चिम जर्मनी में विरोधी दल एवं मजदूर संस्थाएं एकीकरण के विरोध में आंदोलन शुरु कर रही हैं। उनकी मांग है कि एकीकरण के प्रश्न पर रूस से वार्ता की जाए और पेरिस समझौते को स्वीकार न किया जाए।

चंदा, धंधा और गोपनीयता

स्वस्थ लोकतंत्र का सबसे कारगर हथियार खुलेपन की स्वतंत्रता है। इसे महात्मा गांधी के साधन-साध्य के सिद्धांत से समझा जा सकता है।

संदीप जोशी | चुनावी चंदा

जनसेवा में कौन-कौन-सी चीजें गोपनीय हों-यह बहस उतनी ही पुरानी है, जितना जनमानस। लेकिन जनतंत्र से सेवा नीति के लिए आए जनसेवकों को गोपनीयता से क्या लाभ हो सकता है? गोपनीयता अगर केवल सत्ता लाभ के लिए ही हो, तो भी समाज इसको पचा सकता है। लेकिन गोपनीयता अगर भ्रष्टाचार का लाभ उठाने के लिए हो, तो समाज इसको कैसे देखेगा? माना जाता है कि तानाशाही शासन के लिए सबसे मजबूत हथियार गोपनीयता रहती है। लेकिन स्वस्थ लोकतंत्र का सबसे कारगर हथियार खुलेपन की स्वतंत्रता है। इसका सीधा लेना-देना महात्मा गांधी के साधन-साध्य के सिद्धांत से समझा जा सकता है।

जब मिली-जुली संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन (यूपीए) सरकार का भ्रष्टाचार सबके सामने आया था, तो भ्रष्टाचार के खिलाफ पूरे देश में रोष जागा था। जनता में इतना आक्रोश था कि वह सड़कों पर उतर आई थी। जनता ने इसके खिलाफ अहिंसक

संघर्ष किया और यूपीए की सत्ता पलट दी।

राजनीतिक पार्टियों को चंदा पहले किन रास्तों से आता था, इसका पता नहीं चलता था। इसलिए वर्ष 2017 में भारतीय जनता पार्टी की अगुआई वाली नेशनल डेमोक्रेटिक एलायंस (एनडीए) सरकार द्वारा राजनीतिक चंदे के लिए चुनावी बॉन्ड की व्यवस्था का वादा दिया गया था। गोपनीय ढंग से चुनावी चंदे का यह खेल भी चलता रहता, अगर सर्वोच्च न्यायालय ने इसमें दखल न दिया होता। आखिर जनता को अपनी सेवानीति के लिए राजनीतिक दलों द्वारा जुटाए जा रहे चंदे के बारे में जानने का हक है या नहीं? इस बीच कुछ छुटभैए चंदाखोर के नाम भी सामने आए। और फिर जनता को इस बात का पता चला कि चुनावी चंदे के धंधे में पक्ष-विपक्ष-सभी दल लिप्त रहे हैं।

यह तो सभी जानते हैं कि चुनावी चंदा देने वाले उद्योगों का धन भी जनता से ही उगाहा जाता है। चुनावों में धन का खर्च लगातार अनाप-शनाप ढंग से बढ़ता जा रहा है। मतदाता के धन से जनमत पाने वाले जनसेवक फिर अपने मन से उसको खर्च करते हैं और खर्च का हिसाब भी नहीं देना चाहते। जनता में हर पक्ष यानी सभी राजनीतिक दलों से सवाल करने की जागरूकता रहनी चाहिए। जनता को चुनाव में खर्च होने वाले धन के बारे में जानने का पूरा हक है। जनता को यह भी जानने का हक है कि उन्हीं से उगाहे गए धन से दिए गए चंदे का किस उद्योग घराने ने कितना सही-गलत, लाभ-फायदा उठाया। या चंदा पाने के बाद संबंधित राजनीतिक दल ने उन उद्योगों को कितना लाभ पहुंचाया।

सत्ता पक्ष और विपक्ष, दोनों की जनता के प्रति जिम्मेदारी है कि चंदे का यह सब खेल गोपनीयता में न चले। पिछले दिनों एक समाचार पत्र से ही जानने को मिला कि वर्ष 1961 में टाटा समूह के जेआरडी टाटा को नए बने स्वतंत्र दल के सी. राजगोपालाचारी ने चंदे के लिए पत्र लिखा था। जवाब में टाटा ने माना कि चंदा तो वह कांग्रेस को देते हैं, लेकिन देशभक्त उद्योग घराना होने के नाते स्वतंत्र पार्टी को भी चंदा देना उनका कर्तव्य है, क्योंकि कोई भी लोकतंत्र बिना मजबूत विपक्ष के टिका नहीं रह सकता। टाटा ने फिर बाकायदा तत्कालीन प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू को पत्र लिखकर बताया कि रचनात्मक विपक्ष को मजबूत करने का एक जरिया यह तरीका भी है। जो उद्योगपति तमाम सरकारों को जेब में रखने का दावा करते रहे हैं, उनमें ऐसी राय जगजाहिर करने का दम शायद ही हो।

इससे उलट कॉरपोरेट इंडिया के तीन बड़े संगठनों ने सर्वोच्य न्यायालय में सवाल किया और जताया कि चुनावी बॉन्ड की गोपनीयता खत्म करने से भारत के उद्योगों पर गलत असर पड़ेगा, क्योंकि वर्ष 2017 में सरकार ने गोपनीयता का वादा किया था। भारत में स्पष्ट कानून है कि निजता का मौलिक अधिकार अपने आप में पूर्ण नहीं है और इसलिए सार्वजनिक हित के सामने उसे झुकना ही होगा।

'मैं गोपनीयता को पाप मानकर घृणा करता हूं' कहने वाले महात्मा गांधी से जब स्वतंत्रता के लिए छिपकर आंदोलन करने वाले मिलने आए, तो उन्होंने कहा, 'जब आप बड़े प्रश्नों पर विचार करेंगे, तो आपको पता लगेगा कि सब तरह की गुप्तता छोड़कर खुले रूप में काम करने से ही आप आगे बढ़ सकते हैं और विकास कर सकते हैं। देश को स्वतंत्रता दिला सकते हैं।'

सेवा का साध्य धंधे के चुनावी चंदे से न साधा जाए। धंधे के चंदे से ही चुनाव भी गंदे हुए हैं। इस चंदे के फंडे को देश के हर बंदे को समझना होगा।

edit@amarujala.com

गुरदा प्रत्यारोपण

एक दुर्लभतम चिकित्सकीय कामयाबी इंसानों के हाथ लगी है। पहली बार किसी इंसान में सूअर के गुरदे लगाए गए हैं और उस इंसान को अस्पताल से घर भी भेज दिया गया है। मैसाचुसेट्स जनरल अस्पताल के डॉक्टरों के अनुसार, सूअर की किडनी को 62 वर्षीय रिचर्ड स्लेमैन में प्रत्यारोपित किया गया है। किडनी अच्छी तरह से काम कर रही है, रक्त से अपशिष्ट को हटा रही है, मूत्र का उत्पादन कर रही है और शरीर के तरल पदार्थों को संतुलित भी कर रही है। मतलब, शरीर में किडनी का जो भी काम होता है, उसकी पूर्ति हो रही है। मरीज स्वस्थ है और हंसी-खुशी घर गया है। अगर इस मरीज का जीवन आगे भी आसान रहता है, तो फिर यह घटना सेहत की दुनिया के लिए मील का पत्थर साबित होगी। विगत कुछ वर्षों से चिकित्सक वैज्ञानिक सूअर के अंगों को लेकर लगातार प्रयोग कर रहे हैं और अभी तक कामयाब नहीं मिल रही थी। कुछ प्रत्यारोपण पहले किए गए थे, पर कामयाब नहीं हुए थे। इंसानी शरीर ने सूअर के अंग को मंजूर करने से इनकार कर दिया था। अब अगर सूअर के अंग को मानव शरीर ने मंजूर कर लिया है, तो साफ है, किडनी रोग की दुनिया में नई क्रांति का आगाज हो चुका है।

गौर करने की बात है कि सूअर के अंगों को इंसानों के अनुरूप बनाने के लिए जेनेटिक रूप से संशोधित करने की चेष्टा वैज्ञानिक विगत वर्ष से ही कर रहे थे। वैज्ञानिकों को यह समझ में आ गया था कि सामान्य सूअर के सामान्य अंगों को अगर इंसानों में लगाया जाए, तो वे काम नहीं करेंगे। अतः अंगों को संशोधित किया गया, ताकि मानव अंगों की कोशिकाओं के साथ उसका मेल हो सके। ताजा सफलता से उत्साहित वैज्ञानिक मान रहे हैं कि क्रॉस-प्रजाति अंग प्रत्यारोपण के युग की शुरुआत हो चुकी है। अगर मरीज के जीवन को कुछ दिन भी बचाया जा सका, तो वैज्ञानिकों को अपने प्रयोग को आगे बढ़ाने में मदद मिलेगी। गौर करने की बात है कि मानव जीवन का एक-एक पल महत्वपूर्ण है और एक-एक पल जीने के लिए लोग तड़पते हैं। फिलहाल, मानव से मानव किडनी प्रत्यारोपण को चिकित्सकों ने सफल बना लिया है और ऐसे प्रत्यारोपण के बाद 90 प्रतिशत से ज्यादा मरीजों को एक साल से ज्यादा की जिंदगी नसीब हो जाती है। अगर कामयाबी का ऐसा ही प्रतिशत जानवर से इंसान में प्रत्यारोपण में भी हासिल हो गया, तो इलाज के इस तरीके को दुनिया भर में बल मिलेगा।

अब अगर सूअर के अंग को मानव शरीर ने मंजूर कर लिया है, तो मतलब है कि किडनी रोग की दुनिया में नई क्रांति का आगाज हो चुका है।

यूनाइटेड नेटवर्क फॉर ऑर्गन शेयरिंग के मुख्य चिकित्सा अधिकारी डॉक्टर डेविड क्लासेन, जो अमेरिका की अंग प्रत्यारोपण प्रणाली का प्रबंधन कर रहे हैं, ने कहा कि सर्जरी ने पशु से मानव अंग प्रत्यारोपण या जेनोट्रांसप्लांटेशन की संभावना बढ़ा दी है। हालांकि, अभी भी बहुत काम किया जाना बाकी है। चिकित्सकों को यह देखना पड़ेगा कि ऐसे सफल प्रत्यारोपण की संख्या में इजाफा हो, ताकि चिकित्सा की यह विधि औपचारिक रूप ले सके। अभी दुनिया में 20 लाख से ज्यादा लोग किडनी प्रत्यारोपण या डायलिसिस की मदद से जिंदा हैं। किडनी के गंभीर मरीजों की संख्या के साथ सामान्य मरीजों की संख्या भी बढ़ती जा रही है। यह बात गौर करने की है कि किडनी दान करने वाले भी आसानी से नहीं मिलते हैं या आसानी से तैयार नहीं होते हैं। जहां किडनी की जरूरत पड़ती है, वहां परिवार के लोग भी दान से पांव पीछे खींचने लगते हैं। अतः पशुओं से किडनी लेकर इंसानों में लगाने की प्रक्रिया को सफल बनाना समय की मांग है।

नेताजी आपकी पॉलिटिक्स क्या है

यहां स्कैन करें

हरजिंदर | वरिष्ठ पत्रकार

जब विचारधाराओं की मियाद खत्म हो चुकी हो और उनके प्रति प्रतिबद्धता यदि हमें कहीं नहीं ले जा पाती, तो वैचारिकता से तलाक ले चुकी राजनीति भी हमें कहीं नहीं ले जा सकती।

अगर पूछा जाए कि भाजपा की विचारधारा क्या है, तो सीधा जवाब होगा- हिंदुत्व! मगर राजनेताओं का जो काफिला स्वागत के लिए विशेष तौर पर तैयार किए गए तोरणद्वार से होता हुआ भाजपा में प्रवेश कर रहा है, उनमें से कितने वास्तव में इस विचारधारा के अनुयायी हैं? कई तो उन पार्टियों से आए हैं, जो भाजपा की 'संकीर्ण' विचारधारा की आलोचना करते नहीं थकती हैं। वित्त मंत्री निर्मला सीतारमन ने पिछले दिनों एक टीवी चैनल से यह बात कई बार कही कि हमारी पार्टी के दरवाजे सबके लिए खुले हैं। यानी, आप आएंगे, तो प्रवेश देने से पहले आपकी सोच, आपके विचार, आपके इतिहास, आपकी पृष्ठभूमि किसी की जांच नहीं होगी। बेशक, बात सिर्फ इतनी भर ही नहीं होती कि ऐसे दरवाजे अक्सर उन्हीं लोगों के लिए खुलते हैं, जो चुनाव में या फिर पूरी राजनीति में पार्टी को कोई फायदा पहुंचाने की हैसियत रखते हैं।

वैसे यहां भारतीय जनता पार्टी का जिक्र आज के राजनीतिक ट्रैफिक रुझान को देखते हुए प्रसंगवश ही किया गया है। ऐसे रुझान समय के हिसाब से बदलते रहे हैं। देश की कम्युनिस्ट पार्टियों को छोड़ दें, तो दलबदल करने वाले नेताओं के लिए तकरीबन सभी पार्टियों के दरवाजे जरूरत के हिसाब से खुलते रहे हैं। वैसे बात दरवाजे खुलने की नहीं है, क्योंकि अक्सर ये दरवाजे बंद नहीं होते। चुनाव करीब हो, तो आने-जाने वालों का सिलसिला बढ़ जाता है, इसलिए सुर्खियों में ज्यादा रहता है। हमारे बीच कई नेता तो ऐसे हैं, जो अपने क्षेत्र के तकरीबन सभी दलों की 'विचारधारा' का स्वाद चख चुके हैं।

पिछले दिनों एक अंग्रेजी पत्रिका ने अपने मुखपृष्ठ पर सभी विचारधाराओं के ताबूत बना दिए, जिसका अर्थ हुआ कि विचारधाराएं अब मर चुकी हैं। इसके साथ ही डेनियल बेल की उस मशहूर किताब का जिक्र भी किया गया, जिसका शीर्षक था, *द एंड ऑफ आइडियोलॉजी*, यानी विचारधारा का अंत। 1960 के आसपास छपी इस किताब में दूसरे विश्व युद्ध के बाद की दुनिया का जिक्र करते हुए कहा गया है कि अब संसार को आगे बढ़ने के लिए राजनीतिक विचारधारा की जरूरत नहीं है। लेखक मान रहे थे कि तकनीक और तमाम अन्य विकास के बाद विचारधारा वाली जिद प्रासंगिक नहीं रह गई। कुछ हद तक वह *सार-सार को गहि रहे, थोथा देई उड़ाय* वाली बात कहते थे। अपने बारे में उन्होंने कहा था कि मैं आर्थिक विचारों के हिसाब से समाजवादी हूं, राजनीति के लिए उदारपंथी और संस्कृति के मामले में कट्टरपंथी।

विचारधारा की जरूरत है या नहीं, इस पर बाद में लंबी बहसें चलीं। विचारधाराओं के युग में हमने क्या पाया और क्या खोया, इस पर भी चर्चाएं हुईं। ऐसी सोच भी सामने आई, जो विचारधारा को बहुत सी समस्याओं की जड़ मानती थी। भारत में एक विमर्श चला, जिसमें कहा गया कि 'विचारधारा विष है'।

इसका यह मतलब भी नहीं कि हॉर्वर्ड विश्वविद्यालय के प्रोफेसर डेनियल बेल जिस दुनिया में बैठकर यह अवधारणा दे रहे थे, वहां विचारधाराओं का पूरी तरह से सफाया हो गया। अमेरिका में आज भी डेमोक्रेटिक पार्टी और रिपब्लिकन पार्टी, दो पृथक विचारधाराओं का प्रतिनिधित्व करती हैं। इसी तरह, ब्रिटेन में लेबर पार्टी, कंजर्वेटिव पार्टी और लिबरल डेमोक्रेट हैं। भले ही वे उस अर्थ में विचारधारा को दिल से लगाकर रखने वाली कट्टरपंथी पार्टियां नहीं हैं, जिस अर्थ में एक दौर के यूरोप में हुआ करती थीं।

अक्सर यह भी कहा जाता है कि विचारधारा का अंत हुआ है, वैचारिकता का नहीं। इन पार्टियों के पास वैसे यूटोपिया नहीं हैं, जैसे विचारधारा वाले युग में हुआ करते थे। मगर उनके पास बहुत सारे अपने लक्ष्य हैं, बहुत सारे समान लक्ष्य भी हैं। समान लक्ष्यों को कैसे हासिल करना है, इसको लेकर उनकी सोच अलग-अलग है। संसाधनों का इस्तेमाल कैसे किया जाए, इसको लेकर भी मतभेद है। जब तक ये मतभेद रहेंगे, उनकी वैचारिकता भी अलग-अलग ही रहेगी।

विचारधाराओं ने हमें दो और चीजें भी दी थीं- दुनिया को आदर्श बनाने के सपने और समर्पण। आदर्श को लेकर समझ और सपने तो समय के हिसाब से बदलते रहते हैं। सब जगह बदल भी गए, पर समर्पण पूरी तरह से विदा हो गया, ऐसा नहीं कहा जा सकता। कम से कम पश्चिमी लोकतंत्रों में विचारों और वैचारिकता के प्रति समर्पण आज भी कमोबेश देखा जा सकता है।

ठीक यहीं पर भारत का लोकतंत्र थोड़ा, या शायद बहुत ज्यादा अलग हो जाता है। पश्चिम के देशों में आप नहीं पाएंगे कि डेमोक्रेट प्रतिनिधि ने इस्तीफा दिया और रिपब्लिकन पार्टी में शामिल हो गया। इस समय अमेरिका में डोनाल्ड ट्रंप के दोबारा राष्ट्रपति पद की रेस में आने को लेकर रिपब्लिकन पार्टी के पुराने लोगों में काफी नाराजगी की खबरें हैं, लेकिन ये नाराज लोग जुलूस बनाकर डेमोक्रेटिक पार्टी में शामिल हो जाएंगे, ऐसी कोई आशंका नहीं है।

जब हम पश्चिम में विचारधाराओं के अंत की बात करते हैं, तो वहां उसका अर्थ होता है, एक लीक पर चलने वाली पुरातन जिद्दी कट्टरता का अंत या नए युग के राजनीतिक प्रबंधन के आगे कुछ पुरानी धाराओं का अप्रासंगिक हो जाना। मगर भारत में इसका कारण राजनीति का फूहड़ अवसरवाद है। यहां विचारधाराएं तो बाद में खत्म हुईं, राजनीतिक मर्यादा, नैतिकता और प्रतिबद्धता को पहले श्रद्धांजलि दी गई। यह हमारे यहां सब जगह हो रहा है। प्रतिबद्धता जब राजपाट खोती जा रही है, तो सिंहासन काले धन और बाहुबल के हवाले होता जा रहा है। हालांकि, राजनीति में नैतिकता और प्रतिबद्धता के नाम पर समय-समय पर जिन लोगों ने सत्ता हासिल की, उनका हश्र भी हम देख ही चुके हैं।

शुरू में हमने देखा था कि अपवाद सिर्फ कम्युनिस्ट पार्टियां हैं। राजनीति के तमाम झंझावातों के बीच आज भी वे अपनी विचारधारा से चिपकी हैं, पर जिस तरह से उनकी ताकत और उनका भूगोल लगातार सिमटता जा रहा है, वह विचारधारा को लेकर कोई उम्मीद नहीं बंधाता। उनके साथ यह भारत ही नहीं, पूरी दुनिया में हुआ है, पर वह एक अलग कहानी है।

इससे एक सबक तो हम ले ही सकते हैं कि जब विचारधाराओं की मियाद खत्म हो चुकी हो और उनके प्रति प्रतिबद्धता यदि हमें कहीं नहीं ले जा पाती, तो प्रतिबद्धता व वैचारिकता से तलाक ले चुकी राजनीति भी हमें कहीं नहीं ले जा सकती। भले ही राजनीतिक दल, उनके नेता और घोषणापत्र कुछ भी दावे कर लें।

(ये लेखक के अपने विचार हैं)

शहरों में प्रदूषण से युद्ध स्तर पर लड़ने की जरूरत

यहां स्कैन करें

इंदिरा राजारामन | वरिष्ठ अर्थशास्त्री

हाल ही में जारी विश्व वायु गुणवत्ता रिपोर्ट 2023 की किसे चिंता है? भारत में वायु प्रदूषण को महत्वपूर्ण राष्ट्रीय चुनावी मुद्दा होना चाहिए था, पर दुर्भाग्य से ऐसा नहीं है। दुनिया में हर जगह की तरह भारत में भी हवा की गुणवत्ता स्थानीय विषय होती है, इसलिए इसे राज्य या स्थानीय सरकारों के हाथों में सौंप दिया जाता है। जिम्मेदारी स्पष्ट है, फिर भी दुनिया के 50 सबसे प्रदूषित शहरों में 42 भारतीय शहरों (10 राज्यों में शामिल) का होना स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि वायु गुणवत्ता की उपेक्षा की समस्या एक व्यापक राष्ट्रीय मुद्दा है।

अगर प्रदूषण का मुद्दा राष्ट्रीय चुनावों में या किसी भी स्तर के चुनावों में सामने नहीं आता है, तो क्या इसकी वजह यह है कि मतदाताओं को इसकी परवाह नहीं है? क्या ऐसा इसलिए है, क्योंकि शहरी वायु प्रदूषण को विकास और नौकरियों के साथ अनिवार्य माना जाता है? बिना सर्वेक्षण के यह कहना नामुमकिन है, लेकिन जिन वजहों से ग्रामीण प्रवासी शहरों में अस्थायी प्रवासी बनना पसंद करते हैं और अपने परिवारों के साथ शहर नहीं जाते हैं, तो इसकी वजह उनके गांवों की साफ हवा है। बड़ी संख्या में लोग हैं, जिनको अगर गांव में ही रोजगार मिल जाए, तो वे शहर जाना पंसद नहीं करेंगे। भारतीय संविधान में भी वायु गुणवत्ता का विशेष उल्लेख नहीं किया गया है।

बड़े और छोटे शहरों में वायु प्रदूषण जिंदगी और मौत का मामला बन गया है, फिर भी किसी चुनाव में यह मुद्दा नहीं बनता है।

नई दिल्ली दुनिया की सबसे प्रदूषित राजधानी है, जिसने बांग्लादेश के ढाका को भी आसानी से पीछे छोड़ दिया है। एक केंद्रशासित प्रदेश के रूप में दिल्ली अपनी स्वयं की विधायिका और विधिवत निर्वाचित सरकार के बावजूद एक पूर्ण राज्य नहीं है। इसे केंद्र सरकार के साथ कदम से कदम मिलाते हुए चलना पड़ता है और भ्रम की स्थिति बन जाती है कि यह किसके शासन की छत्रछाया में है?

वैसे वायु प्रदूषण पर आमतौर पर केंद्र सरकार और दिल्ली राज्य सरकार के बीच उद्देश्य का कोई टकराव नहीं होना चाहिए, लेकिन दिल्ली के आसपास के राज्य अक्तूबर से दिसंबर के महीनों के दौरान खरीफ की फसल के अवशेषों को जलाने पर काबू पाने में नाकाम या अनिच्छुक रहते हैं। अकादमिक शोध पत्रों और रिपोर्टों में पेश किए गए समाधानों की भरमार के बाद भी दिल्ली की समस्या पड़ोसी राज्यों के साथ किसी समझौते तक पहुंचने में नाकाम रहती है। दिल्ली के अंदर वाहनों से होने वाले प्रदूषण को नियंत्रित करने की दिशा में एकमात्र पहल बिजली या बैटरी से चलने वाली बसों की शुरुआत रही है, जो अक्सर शहर की सड़कों पर खाली चलती हैं, क्योंकि उनके मार्गों को तर्कसंगत नहीं बनाया गया है।

15वें वित्त आयोग ने वायु प्रदूषण के प्रयासों के लिए केवल दस लाख से ज्यादा आबादी वाले शहरों को लक्ष्य बनाया है। इन शहरों को मिलियन-प्लस चैलेंज फंड, एमसीएफ मिलता है। हाल ही में समाप्त हुए वित्त वर्ष 2023-24 में एमसीएफ सूची के सभी शहरों के लिए कुल राशि 2,431 करोड़ रुपये थी। ध्यान रहे, यहां भी दिल्ली, चंडीगढ़ और श्रीनगर, केंद्रशासित प्रदेशों के शहरों के रूप में एमसीएफ के तहत नहीं आते हैं।

पटना विश्व वायु गुणवत्ता रिपोर्ट में सबसे प्रदूषित शहरों की सूची में 20वें स्थान पर है। पटना एमसीएफ सूची में है, पर किसी एमसीएफ शहर को अपना 100 प्रतिशत आवंटन पाने के लिए पार्टिकुलेट मैटर में 15 प्रतिशत की कमी और 200 से कम एक्यूआई वाले दिनों की संख्या में 15 प्रतिशत की वृद्धि दिखानी चाहिए। यदि पटना 2023-24 में इन शर्तों पर उत्तीर्ण होता, तो उसे 113 करोड़ रुपये का तय बजट मिलता, जो उसके अच्छे कामों का इनाम होता।

ध्यान रहे, दुनिया का सबसे प्रदूषित शहर बेगूसराय एमसीएफ सूची में नहीं है। उसके साथ ही 39 अन्य भारतीय शहर भी आबादी के हिसाब से बहुत छोटे हैं, हालांकि इनमें से कुछ एमसीएफ सूची का हिस्सा हो सकते थे। जाहिर है, एमसीएफ और उसकी शर्तों में सुधार होना चाहिए। गरीब आबादी वायु प्रदूषण से सबसे ज्यादा पीड़ित है। हमें अंतर-राज्यीय और राज्य-स्थानीय भागीदारी के माध्यम से अभियान मुद्रा में आकर वायु प्रदूषण को कम करने की दिशा में आगे बढ़ना होगा। इसकी सख्त जरूरत है, क्योंकि यह नागरिकों की जिंदगी और मौत का मामला है।

(ये लेखक के अपने विचार हैं)

मनसा वाचा कर्मणा

मन की प्याली खाली करो

ओशो एक झेन कथा कहते हैं। प्रसिद्ध झेन फकीर नान इन एक पहाड़ पर रहते थे। एक बार किसी विश्वविद्यालय के प्रोफेसर ने उनसे प्रार्थना की कि मुझे ईश्वर के संबंध में कुछ समझाएं। यह निर्वाण क्या है? ध्यान का राज क्या है, इस संबंध में मेरा मार्गदर्शन करें।

प्रोफेसर ने एक सांस में सब कुछ पूछ डाला, ईश्वर, निर्वाण, ध्यान; कुछ बचा ही नहीं। फकीर ने कहा, पहाड़ पर मेरे आश्रम में आएं। वहीं बात हो सकती है। एक दिन प्रोफेसर साहब किसी तरह हांफते हुए पहाड़ चढ़कर फकीर के आश्रम में गए। नान इन ने कहा, आप पहाड़ चढ़कर आए हैं, थके-मांदे हैं, थोड़ा सुस्ता लें, तब तक मैं चाय बना दूं। एक प्याली चाय पी लें, फिर फुरसत से बात होती है। यह झेन गुरुओं का तरीका है। वे चाय को बहुत महत्व देते हैं, क्योंकि चाय सजगता का प्रतीक है। उनके गुरु बोधिधर्म को माउंट टा पर ध्यान करते हुए चाय का पौधा मिला और उन्हें पता चला कि इससे नींद गायब हो जाती है। नान इन ने कहा, शायद चाय पीते-पीते ही बात हो जाए? कौन जाने प्याली में चाय डालते-डालते ही बात हो जाए!

प्रोफेसर थोड़ा सा हैरान हुआ कि यह आदमी पागल तो नहीं मालूम होता! निर्वाण, ईश्वर, ध्यान जैसे गंभीर विषयों पर प्याली में चाय उड़ेलते हुए कैसे बात हो जाएगी? इतनी लंबी और कष्टसाध्य यात्रा करके मैं भी कहां चला आया। भरी दोपहरी में पहाड़ चढ़ा। लेकिन अब आ ही गया हूं, तो कम से कम चाय पी ही लूं। और तो कुछ ज्यादा आशा नहीं दिखती।

नान इन ने चाय बनाई, प्याली प्रोफेसर के हाथ में दी और केतली से उसमें चाय डालनी शुरू की, तो डालते ही चले गए। प्याली भर गई, प्याली से चाय गिरने लगी। प्लेट भी भर गई और गिरने-गिरने को होने लगी, तो प्रोफेसर चिल्लाया, रुकिए, आप होश में तो हैं? अब तो चाय फर्श पर गिर जाएगी। अब एक बूंद भी इस प्याली में नहीं आ सकती।

फकीर ने कहा, मैं तो सोचता था कि तुममें बुद्धि नहीं है, लेकिन तुम बुद्धिमान आदमी हो। तुम्हें यह बात समझ में आ गई कि प्याली इतनी भरी है कि इसमें एक

फकीर ने प्रोफेसर से कहा, तुमने देखा, तुम्हारे मन की प्याली कितनी भरी हुई है? मेरे फर्श पर चीजें गिर रही हैं उससे। पहले अपनी प्याली खाली करके आओ, फिर पूछना गहरे सवाल।

बूंद भी चाय नहीं समा सकती और तुम्हारे मन की प्याली में तुम सोचते हो ध्यान समा सकता है, ईश्वर समा सकता है? तुमने देखा कि भीतर कितना ज्ञान, कितने विचार भरे हुए हैं? तुम्हारे मन की प्याली कितनी भरी हुई है? मेरे फर्श पर चीजें गिर रही हैं उस प्याली से। तुम जब जाओगे, तो मुझे फर्श की घिस-घिसकर सफाई करनी पड़ेगी। पहले अपनी प्याली खाली करके आओ, फिर पूछना ऐसे गहरे सवाल। ये ऐसे सवाल नहीं हैं, जिनके जवाब हर किसी को दिए जाएं। लेने वाले में पात्रता होनी चाहिए!

अमृत साधना

ऋषि सुनक | प्रधानमंत्री, ब्रिटेन

बीते 75 वर्षों में बहुत कुछ बदल गया, लेकिन हमारी स्वतंत्रता और सुरक्षा की आधारशिला के रूप में 'नाटो' निरंतर खड़ा रहा है। इस गठबंधन के प्रति अपने ऐतिहासिक वचन को हम फिर दोहराते हैं। हम साथ खड़े हैं, साथ रहेंगे।

हिन्दुस्तान Hindustan | 75 साल पहले 08 अप्रैल, 1949

विदेशी पूंजी की गुंजाइश

भारत के स्वतंत्र होने के बाद देश-विदेश के पूंजीपतियों में एक अस्थिरता आना स्वाभाविक था। विविध वादों के इस प्रयोग में जब तक यह निश्चय न हो कि नई सरकार किस नीति पर चलेगी, पूंजी रोके रखने की प्रवृत्ति स्वाभाविक है। किसी भी शासन-परिवर्तन के समय यही होता है, फिर हमारे देश में तो शासन-परिवर्तन ने अनेक ऐसी समस्याएं भी उपस्थित कीं, जो अच्छे-अच्छों को उलझन में डाल सकती थीं। ईश्वर की कृपा कहिए अथवा हमारा भाग्य, जल्दी ही उन पर काबू पा लिया गया है और अब स्थिरता की ओर तेजी से कदम बढ़ाया जा रहा है। विदेशी पूंजी के सम्बन्ध में भारतीय लोकसभा में राष्ट्रीय सप्ताह के प्रथम दिन (बुधवार, ६ अप्रैल को) प्रधानमन्त्री पं. जवाहरलाल नेहरू ने जो वक्तव्य दिया वह भी इस दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है।

विदेशी आधिपत्य के समय हम देश में विदेशी पूंजी के विरोधी रहे हैं, क्योंकि विदेशी पूंजी ही वैदेशिक साम्राज्यवाद की जड़ साबित हुई है। कहीं धर्म पहले प्रवेश करता है और कहीं अर्थ, इसके बाद इनके संरक्षण के नाम पर विदेशी सत्ता का हस्तक्षेप और साम्राज्य आता है। इस प्रकार विदेशी धर्म और अर्थ दोनों ही भयावह होते हैं। किन्तु हर एक चीज द्विधर्या होती है। विष मारक है, तो कहीं औषध का काम भी करता है। इसी प्रकार विदेशी पूंजी भी हानिकारक ही रहे, ऐसा नहीं मानना चाहिए। परिस्थिति विशेष में वह हानिकारक है तो अन्य परिस्थिति में हितावह भी हो सकती है। प्रश्न केवल विवेक का है। जरूरत इस बात की है कि उपयोग करते वक्त हम ध्यान रखें कि वह हमारे लिए हानिकर नहीं हितावह ही साबित हो। आज जब हम स्वतंत्र हैं तो हमीं को सोचना है कि विदेशी पूंजी हमारे लिए वांछनीय है या नहीं और आवश्यक है, तो किस तरह वह हमारे लिए हितकर सिद्ध हो सकती है? बदली हुई परिस्थिति में बदली हुई दृष्टि से ही विचार होना चाहिए।

उपर्युक्त दृष्टि से विचार करें तो इस वास्तविकता की उपेक्षा नहीं कर सकते कि आज जब हमारे यहां खाने के लिए अन्न और दूध की कमी है, पहनने के लिए कपड़े का अभाव है, रहने के लिए मकानों की परेशानी है और सुख-सुविधा के सामान की भी दुर्लभता है तो उसकी पूर्ति करने के लिए देशहित का ध्यान रखते हुए सभी साधनों को अपनाना चाहिए।

सियासत में परिवारवाद पर आपत्ति क्यों

चुनाव के वक्त परिवारवाद एक बड़ा मुद्दा बनकर सामने आता है। विशेषकर कांग्रेस व कुछ क्षेत्रीय पार्टियों को यह कहकर घेरा जाता है कि उनके यहां विरासत के आधार पर नेताओं का चयन होता है, इसलिए वहां आंतरिक लोकतंत्र का अभाव है। हालांकि, तथ्य यह है कि सिर्फ विपक्षी दलों में नहीं, सत्तासीन पार्टियों में भी वंशवाद की जड़ें काफी मजबूत हैं। यही कारण है कि परिवारवाद जैसा मुद्दा अब बेमानी है। यदि इसकी पूरी सच्चाई जनता के सामने आ गई, तो राजनीतिक दल इस नाम पर शायद ही वोट मांग सकेंगे। हालांकि, सवाल यह भी है कि वंशवाद आखिर गलत क्यों माना जाता है? अगर किसी परिवार का मुखिया वकील होता है, तो वह यही चाहता है कि उसकी संतानें भी उसी के पेश को अपनाएं। इसी तरह, डॉक्टर अपने बच्चों को डॉक्टर बनाना चाहता है। जब सभी लोग अपनी विरासत अपने बच्चों को सौंपना चाहते हैं, तो राजनेताओं ने ऐसा कर लिया, तो कौन सी आफत आ गई? मतलब साफ है, सिर्फ चुनाव में लोगों को भरमाने के लिए परिवार को मुद्दा बनाया जाता है, अन्यथा इसका कोई मतलब नहीं है। अलबत्ता, वंशवाद से आए लोग राजनीति को कहीं अच्छी तरह से समझ सकते हैं, इसलिए इससे जनता को फायदा ही होता है।

वीरेंद्र कुमार जाटव, टिप्पणीकार

सभी दल इससे ग्रसित

राजनीति भी एक धन है। जब आप 20, 30 या 50 साल की सक्रिय राजनीति करते हैं, तब आप राजनीति को एक धन का रूप देते हैं और इतिहास गवाह है कि इंसान अपने धन का हस्तांतरण अपने निकटतम संबंधी को ही करता है। इसमें उसकी औलाद या पति/पत्नी प्रमुख हैं। गैर-राजनीतिक परिवार से आने वाले किसी भी इंसान के लिए यहां इतना संघर्ष और इतनी मानसिक प्रताड़ना है कि अपने आत्म-सम्मान को बचाकर राजनीति करना किसी भलेमानस के लिए संभव नहीं। जनता भी आमतौर पर यही चाहती है कि नेता जी के परिवार से ही कोई आगे आए। निस्संदेह, कई बातें लिखने को आदर्श लिखी जाती हैं और समाज में संतुलन बनाने के लिए लिखनी भी चाहिए, लेकिन अंततोगत्वा ये आप हम ही हैं, जो परिवारवाद से उपजे नेताओं को पुनः विधानमंडल भेजते हैं। इसी कारण करीब-करीब सभी दल इससे ग्रसित हैं। जनता भी एक खास परिवार को सेवा करते देख चुकी होती है और उसे लगता है कि भविष्य में यही परिवार उनका ध्यान रखेगा, नए की भला क्या गारंटी? कुल मिलाकर, परिवारवाद इसलिए है, क्योंकि जनता को यह स्वीकार्य है। इसे इसी रूप में देखना चाहिए।

रंजन ऋतुराज, टिप्पणीकार

अनुलोम-विलोम

राजनीति में परिवारवाद

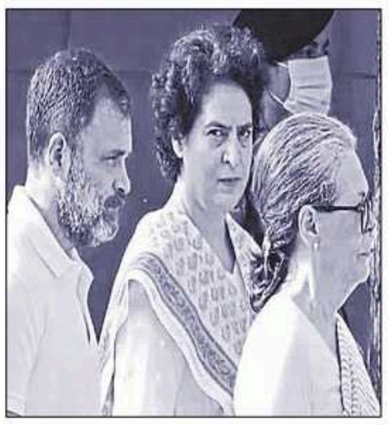

राजनीति अब इससे मुक्त होनी चाहिए

राजनीति में वंशवाद की कतई सराहना नहीं की जा सकती। यह दीमक की तरह राजनीति को बर्बाद कर रहा है। अगर नेता के बच्चे ही नेता बनेंगे, तो उस दल में लोकतंत्र कहां रह जाएगा? इससे देश का लोकतंत्र भी प्रभावित होगा। आज स्थिति यह है कि विधानमंडलों में तकरीबन 30 फीसदी सदस्य वंशवाद का तमगा लेकर पहुंचते हैं। जिनमें योग्यता है, बेशक वे आगे आएं और विरासत संभालें, लेकिन कई राजनेता ऐसे ही होते हैं, जिन्हें सिर्फ अपने राजनीतिक परिवार के कारण चुनाव में फायदा मिलता है। आपत्ति इन्हीं नेताओं को लेकर है।

प्रसिद्ध समाजवादी नेता डॉ राममनोहर लोहिया ने कभी कहा था कि जिनमें नेतृत्व-क्षमता हो, वही आगे आएं। राजनीति में वंशवाद का कोई स्थान नहीं होना चाहिए। मगर दिक्कत यह रही कि राजनीति को सेवा-कर्म के बजाय एक व्यवसाय समझ लिया गया है, जिसमें न तो शैक्षणिक योग्यता की दरकार होती है और न किसी विशेषज्ञता की। बस जनादेश आपके पक्ष में होना चाहिए। नतीजतन, वंश की परंपरा चल निकली। चूंकि कई लोगों के मन में राजनीति की संकल्पना ही गलत है, इसलिए वे यह तर्क देने लगते हैं कि जब डॉक्टर का बेटा डॉक्टर बन सकता है, अभिनेता का बेटा अभिनेता, तो नेता का बेटा नेता क्यों नहीं बन सकता? अब ऐसे लोगों को कौन समझाए कि राजनीति कोई उद्योग नहीं, बल्कि देशसेवा का माध्यम है और इसमें कमाई के मौके ढूंढ़ना गलत है।

आजादी के इन साढ़े सात दशकों में देश में परिवारवाद की जड़ें इतनी मजबूत हो चुकी हैं कि अब इनको हिलाना भी काफी मुश्किल हो गया है। कभी चुनाव में यह एक बड़ा मुद्दा बना करता था, पर अब तो सभी दबी जुबान में इसकी चर्चा करते हैं, क्योंकि इस हम्माम में सभी दल नंगे हैं। यहां तक कि चाल और चरित्र की वकालत करने वाली पार्टियां भी वंशवाद के आगे बेबस नजर आती हैं। फिर भी, इन सबका यह अर्थ नहीं है कि इसका विरोध नहीं होना चाहिए। हमें इसके खिलाफ खुलकर अपनी आवाज बुलंद करनी होगी। राजनेताओं को यह एहसास दिलाना होगा कि उनमें यदि सेवा का माद्दा है, तभी वे जन-प्रतिनिधि बन सकते हैं, अन्यथा कोई दूसरा पेशा अपनाकर वे अपनी कथित कमाई कर सकते हैं। इसके लिए जनता को जागना होगा। राजनीतिक दल तो जागरूकता फैलाने से रहे, इसलिए सामाजिक संगठन अपने स्तर पर लोगों को जागरूक करें और योग्यता के आधार पर अपने प्रतिनिधि के चयन को प्रेरित करें। इससे स्वतः चुनाव सुधार भी हो जाएगा।

हतेश मिश्र, टिप्पणीकार

बिज़नेस स्टैंडर्ड
वर्ष 17 अंक 44

जलवायु मुद्दे और मौद्रिक नीति

भारतीय रिजर्व बैंक की इस वित्त वर्ष में मौद्रिक नीति समिति (एमपीसी) की पहली बैठक ने किसी को चकित नहीं किया। रिजर्व बैंक के गवर्नर का वक्तव्य, मौद्रिक नीति संकल्प तथा नीति प्रस्तुत होने के बाद मीडिया के साथ संवाद में रिजर्व बैंक के अधिकारियों ने यही कहा कि एमपीसी टिकाऊ आधार पर 4 फीसदी मुद्रास्फीति दर के कानूनी अनुदेश का पालन करने के लिए प्रतिबद्ध है। इस बात का स्वागत किया जाना चाहिए। इसके परिणामस्वरूप एमपीसी ने नीतिगत रीपो दर को लगातार सातवीं बार 6.5 फीसदी के स्तर पर अपरिवर्तित रहने दिया। चूंकि एमपीसी ने चालू वर्ष में अर्थव्यवस्था के 7 फीसदी की दर से विकसित होने का अनुमान जताया है, ऐसे में यह लगातार चौथा वर्ष होगा जब कम से कम 7 फीसदी की वृद्धि दर हासिल होगी। यह केंद्रीय बैंक को पर्याप्त नीतिगत गुंजाइश मुहैया कराता है कि वह मुद्रास्फीति पर ध्यान केंद्रित करे और अवस्फीति की प्रक्रिया को पूरा होने दे।

वृद्धि और मुद्रास्फीति दोनों अपेक्षाकृत अनुकूल हैं और टिकाऊ आधार पर चार फीसदी की मुद्रास्फीति दर हासिल करने की बात बाजार प्रतिभागियों द्वारा समझी जा सकती है परंतु यह आकलन भी करना होगा कि लक्ष्य कब तक हासिल होने की संभावना है। मौद्रिक नीति समिति का अनुमान है कि चालू वित्त वर्ष में मुद्रास्फीति की दर औसतन 4.5 फीसदी रहेगी जो लक्ष्य से ऊपर है। एमपीसी में तथा अन्य जगह यह दलील दी गई है कि 2 फीसदी की वास्तविक नीतिगत दर वृद्धि निष्कर्षों को क्षति पहुंचा सकती है। परंतु समिति का एक नजरिया यह भी है कि वास्तविक नीतिगत दर को मुद्रास्फीति के साथ देखा जाना चाहिए जिसके चालू वित्त वर्ष में लक्ष्य से ऊपर बने रहने की उम्मीद है। ऐसे में एमपीसी कितने समय तक रीपो दर को 6.5 फीसदी के स्तर पर बनाए रखेगी? मौद्रिक नीति रिपोर्ट भी गत सप्ताह जारी की गई थी और उसमें भी कुछ दिलचस्प संकेत हैं। रिपोर्ट में कहा गया है कि सामान्य मॉनसून और किसी नीतिगत झटके के सामने न आने की संभावना के साथ ढांचागत मॉडल यही बताता है कि 2025-26 तक मुद्रास्फीति की दर औसतन 4.1 फीसदी रहेगी। पेशेवर अनुमान लगाने वालों का कहना है कि चालू वित्त वर्ष में नीतिगत दरों में 50 आधार अंकों की कमी आ सकती है।

वृद्धि के मोर्चे पर राहत को देखते हुए यह संभव है कि एमपीसी शायद इस बात को लेकर पूरी तरह आश्वस्त होना चाहे कि मुद्रास्फीति टिकाऊ आधार पर लक्ष्य के करीब रहेगी और उसके बाद ही वह मौद्रिक राहत की दिशा में बढ़े। मुद्रास्फीति का तय लक्ष्य हासिल करने में मुख्य समस्या खाद्य कीमतों की अस्थिरता की वजह से देखने को मिल रही है। उदाहरण के लिए फरवरी में खाद्य मुद्रास्फीति की दर 7.8 फीसदी थी और इसने हेडलाइन दर में 70 फीसदी योगदान किया। कोर मुद्रास्फीति 3.4 फीसदी के साथ चालू श्रृंखला में निचले स्तर पर रही। खाद्य कीमतों की अस्थिरता का अनुमान लगाना हमेशा मुश्किल होता है। खासतौर पर अतिरंजित मौसम की घटनाओं को देखते हुए। हकीकत तो यह है कि खाद्य कीमतों की अस्थिरता निकट भविष्य में और मुश्किल हालात पैदा कर सकती है।

एमपीआर में प्रकाशित शोध में कहा गया है कि मुद्रास्फीति और उसकी अस्थिरता दोनों समय के साथ बढ़ सकते हैं। लगातार मौसमी झटकों के चलते सख्त मौद्रिक नीति की आवश्यकता पड़ सकती है। मुद्रास्फीति संबंधी अनुमान में तब्दीली आ सकती है और केंद्रीय बैंक की विश्वसनीयता प्रभावित हो सकती है। ऐसे में मुद्रास्फीति को नियंत्रित रखने के लिए उच्च नीतिगत ब्याज दर की आवश्यकता होगी और यह उत्पादन पर असर डालेगा। जलवायु मुद्दों के साथ-साथ खाद्य अर्थव्यवस्था का प्रबंधन मध्यम से लंबी अवधि में मौद्रिक नीति पर अहम असर डालेगा। फिलहाल तो ध्यान रबी के उत्पादन और मॉनसून पर रहेगा।

अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ रहा भारतीय विपक्ष

विपक्षी दलों को अच्छी तरह पता है कि उनका सामना किससे है? मोदी को सत्ता से हटाने की कोशिश से अधिक उनकी बातचीत के केंद्र में यह होता है कि भाजपा की सीटें कैसे कम की जाएं।

आम चुनावों के पहले चरण के मतदान को बमुश्किल एक सप्ताह से कुछ अधिक समय शेष है और प्रमुख दलों के घोषणा पत्र सामने आने लगे हैं। इस बीच चुनाव से जुड़े जनमत सर्वेक्षणों का पहला संस्करण भी आ चुका है। टेलीविजन चैनलों को लेकर भारतीय जनता पार्टी (भाजपा) के प्रतिद्वंद्वियों का भाव समझा जा सकता है। चैनलों के बारे में वे मानते हैं कि 'इनसे भला और उम्मीद ही क्या की जा सकती है?' परंतु डेटा रहित विश्लेषण से बेहतर है कि कुछ डेटा का विश्लेषण कर लिया जाए।

कुछ ढाबों और तीन टैक्सी चालकों से बात करके चुनाव नतीजों की घोषणा करने वाले हम पत्रकारों तथा पंडितों पर छोड़ दें तो हम अपने पसंदीदा नेताओं की जीत की घोषणा करके निश्चिंत हो सकते हैं। परंतु अगर नतीजे अलग हुए तो इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन (ईवीएम) को दोष दिया जा सकता है।

सच तो यह है कि इस चुनावी मुकाबले में भाजपा की बढ़त के बारे में बताने के लिए आपको किसी चुनाव विशेषज्ञ की जरूरत भी नहीं है। विपक्ष का महत्त्वाकांक्षी 'इंडिया' गठबंधन तालमेल बनाए रखने में संघर्ष करता दिख रहा है और भाजपा ने राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन (राजग) को हुए नुकसान को दूर करने और उसका पुनर्निर्माण करने की दिशा में पहल कर दी है। विपक्षी दलों में ज्यादातर यही बात होती है कि नरेंद्र मोदी को कहां-कहां रोका जा सकता है, सत्ता से बाहर करने की बात तो दूर है।

फिलहाल तो हालात यही है, हालांकि विपक्ष का मानना है कि चुनावी बॉन्ड से जुड़े खुलासों ने उसके चुनाव अभियान को कुछ मजबूती प्रदान की है। भाजपा को 'वॉशिंग मशीन' बताने वाले नारे में दम है, मगर क्या यह इतना शक्तिशाली है कि विपक्ष की तकदीर बदल सके? अधिकांश विपक्षी नेता अभी भी तस्वीर को अधिक संतुलित नजरिये से देख रहे होंगे और वह यह कि मोदी को कैसे सीमित किया जाए? जनवरी के आरंभ में इंडिगो की एक उड़ान में एक विपक्षी नेता से मुलाकात हुई तो विपक्ष के विचारों की एक झलक मिली। एक परिवार के तीसरी पीढ़ी के इस वारिस को ऐसी पार्टी मिली जिसके पास जाति आधारित वोट बैंक है लेकिन उसका प्रभाव सीमित भूभाग में है। मैंने उनसे चुनावी संभावनाओं के बारे में पूछा और यह भी कि क्या उन्हें लगता है कि जाति आधारित वोट बैंक मोदी के आकर्षण में टिकेगा?

राष्ट्र की बात
शेखर गुप्ता

उन्होंने कहा कि जाति आधारित वोट बैंक आमतौर पर सुरक्षित होता है लेकिन जब लोग लोक सभा चुनाव के लिए मतदान करने जाते हैं तो उनके सामने एक ही विकल्प होगा। 'मतदाताओं को कैसे यकीन दिलाएंगे कि कोई विकल्प है?' उन्होंने पूछा। उन्होंने कहा कि उनकी पार्टी और विपक्ष ऐसा मुद्दा नहीं तलाश पा रहे हैं जो बड़ी संख्या में लोगों को सड़क पर उतारे। उदाहरण के लिए अगर आप अग्निवीर योजना का नाम लें तो केवल वहीं सड़क पर उतरेंगे जो इसके खिलाफ हैं। बाकी मतदाताओं को कोई फर्क नहीं पड़ेगा। मैंने पूछा, 'तो हल क्या है? क्या आपकी तीन पीढ़ियों की राजनीति अपने अंतिम दौर में है?'

उन्होंने कहा, 'इसे ऐसे देख सकते हैं मानो हम परमाणु युद्ध के बाद के दौर में हों। यानी जब तक यह दौर बीत नहीं जाता अपना अस्तित्व बचाए रखें। राजनीति में इसका अर्थ होगा अपने जातीय वोट बैंक को बचाए रखना, कम से कम कुछसीटें जीतना और अपने संसाधन बरकरार रखना। इस प्रकार समय बदलने की प्रतीक्षा करना।'

उनकी यह बात मुझे बहुत समझदारी भरी लगी लेकिन कुछ ही दिन बाद वे 'इंडिया' गठबंधन से निकल कर राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन में चले गए। शायद उन्हें अपने अस्तित्व को बचाने का यही तरीका नजर आया। कम से कम जब हालात बदलेंगे तो वे मुकाबले में बने रहेंगे और नए विकल्प तलाशेंगे।

खुद को बचाए रखना या लड़ाई को आगे के लिए टालना इस समय विपक्षी दलों के दिलोदिमाग में चल रहा सबसे प्रमुख विचार है। उनमें से हर एक के सामने अलग-अलग चुनौतियां हैं। ममता बनर्जी की तृणमूल कांग्रेस जैसी पार्टी की बात करें तो अगर वहां भाजपा वर्ष 2019 से अधिक सीट जीतती है तो उसकी उसकी राज्य सरकार अस्थिर होगी।

आम आदमी पार्टी (आप) चाहेगी कि दिल्ली में वह 2019 से बेहतर प्रदर्शन करे। उद्धव ठाकरे की शिव सेना (यूबीटी) और राष्ट्रवादी कांग्रेस पार्टी का शरद पवार धड़ा, इन दोनों को अपने अस्तित्व के लिए जीत की जरूरत है। अखिलेश यादव की समाजवादी पार्टी और लालू-तेजस्वी यादव के राष्ट्रीय जनता दल को भी अगर 2019 जैसी हार का सामना करना पड़ा तो उनके भी अपने-अपने राज्य में सत्ता में लौटने का ख्वाब अधूरा रह जाएगा।

इन पार्टियों के पास भी सीमित फंड हैं। जहां वे सत्ता में नहीं हैं वहां वर्षों से फंड का सूखा पड़ा है और उनकी जमा पूंजी तेजी से खत्म हो रहा है। जो अभी भी किसी राज्य में सत्ता में हैं और पैसों वालों को प्रेरित करके धन जुटा सकते हैं वहां एजेंसियां धन देने वालों को भयभीत कर रही हैं।

ये तो हो गई एक राज्य वाले दलों की बात। आम आदमी पार्टी की बात करें तो इसे डेढ़ राज्य माना जा सकता है। कांग्रेस के लिए अलग तरह की चुनौती है। हाल के समय में पार्टी एकजुट रहने के लिए संघर्ष कर रही है। 2014 से 2019 के बीच उसकी इकलौती उपलब्धि रही 20 फीसदी मतदाताओं को अपने साथ जोड़े रखना। परंतु इसके बावजूद उसे इतनी सीट नहीं मिल सकीं कि पार्टी लोक सभा में नेता प्रतिपक्ष का दर्जा भी पा सके। पार्टी को अपने समर्थकों तथा विपक्षियों को यह यकीन दिलाने के लिए आखिर कितनी सीट जीतने की जरूरत है कि वह भविष्य में चुनौती बनेगी?

कह सकते हैं कि 100 सीट का आंकड़ा दिलचस्प होगा और भारत की राजनीति को बदलने वाला साबित हो सकता है। परंतु क्या यह हकीकत के करीब है? मैं समझता हूं कि अगर कांग्रेस आधिकारिक तौर पर यही कहेगी कि 'इंडिया' गठबंधन सरकार बनाने जा रहा है लेकिन उसके नेता अनुभवी हैं और जीत-हार दोनों का स्वाद चख चुके हैं। ऐसे में वे मानेंगे कि अगर 80 से अधिक सीट आती हैं तो यह उल्लेखनीय सुधार होगा। ऐसा इसलिए कि तुरंत बाद हरियाणा, महाराष्ट्र और झारखंड में विधानसभा चुनाव होने हैं।

चार जून को आने वाले चुनाव नतीजे इन अहम विधानसभा चुनावों की दिशा तय करेंगे। तीनों राज्यों में भाजपा के सामने मजबूत चुनौती है। अगर कांग्रेस 80 से अधिक लोक सभा सीट जीतती है तो झारखंड और महाराष्ट्र में उसके गठबंधन को मजबूती मिलेगी। अगर पार्टी वहां तक नहीं पहुंचती है तो वह विपक्षी गठबंधन में स्वाभाविक नेतृत्वकर्ता होने का दावा भी गंवा सकती है। लगातार तीसरी हार पार्टी को तो नुकसान पहुंचाएगी ही अन्य भाजपा विरोधी दल भी विकल्प तलाशेंगे। कुछ दल वह रास्ता भी अपना सकते हैं जो मेरे सहयात्री नेता ने चुन लिया।

तब भाजपा इतनी हड़बड़ी में क्यों नजर आ रही है? मोदी ऐसे प्रचार क्यों कर रहे हैं मानो वह पहली बार सत्ता में आने के लिए चुनाव मैदान में हैं? विपक्षी नेताओं पर छापे और गिरफ्तारियां क्यों हो रही हैं? यहां तक कि एक मुख्यमंत्री पद पर रहते हुए जेल में है? अगर पार्टी अच्छी स्थिति में है तो इतनी चिंतित क्यों दिख रही है? हम इनमें से कुछ सवालों के जवाब तलाशेंगे। एक उत्तर तो यही है कि मोदी और शाह की भाजपा का स्वभाव ही यही है। उनके लिए हर चुनाव जीवन-मरण का प्रश्न है। दूसरा, जैसा कि हमने चार सप्ताह पहले लिखा था कि मोदी 2024 नहीं 2029 के चुनाव की तैयारी कर रहे हैं। इस प्रक्रिया में विपक्ष को अधिक से अधिक नुकसान पहुंचाने से अच्छा क्या होगा। ताकि बचे हुए अपने भविष्य के बारे में सोचें? विपक्ष और खासकर कांग्रेस की यह चिंता उचित है कि देश पर एक व्यक्ति, एक दल, एक विचारधारा का ऐसा दबदबा कायम हो सकता है जैसा पहले कभी नहीं देखा गया। अगर वे इसे पसंद नहीं करते तो उन्हें मतदाताओं को यकीन दिलाना होगा लोकतंत्र के लिए यह अच्छा नहीं होगा। अब ज्यादा समय नहीं बचा है।

सभी निवेशकों का स्वागत करने का सही वक्त

अगर ऐपल जैसा कोई शीर्ष वैश्विक ब्रांड, भारत में रिकॉर्ड स्तर पर रोजगार के मौके तैयार कर सकता है तब बेवजह अधिक समय लगाने वाली 'लालफीताशाही' की व्यवस्था कायम करने के बजाय इनका स्वागत किए जाने के विचार को और अधिक तेजी से आगे बढ़ाया जाना चाहिए। अनुमानों से अंदाजा मिलता है कि अगस्त 2021 में उत्पादन से जुड़ी प्रोत्साहन योजना (पीएलआई) के लागू होने के बाद से भारत में ऐपल उत्पाद के निर्माण से प्रत्यक्ष नौकरियों के कम से कम 150,000 मौके तैयार हुए हैं।

अमेरिका के कूपर्टिनो की यह कंपनी, भारत में कुशल श्रमिकों के लिए रोजगार के अधिक मौके तैयार कर रही है। ऐपल ने इतने कम समय में जितने रोजगार के मौके तैयार किए हैं उतना देश के किसी भी निजी समूह या सार्वजनिक क्षेत्र की कंपनियों ने रोजगार के मौके नहीं दिए हैं।

दरअसल, 'लालफीताशाही' से 'लाल कालीन बिछाकर स्वागत करने' की बदलाव वाली रणनीति 10 साल पहले भारतीय जनता पार्टी (भाजपा) के चुनाव अभियान का एक अभिन्न हिस्सा था जब यह उस वक्त यह मुख्य विपक्षी पार्टी थी। वर्ष 2014 में कई राजनीतिक रैलियों में विदेशी निवेशकों का स्वागत किए जाने के कथ्य पर जोर दिया गया जिस पर दुनिया ने भी ध्यान देना शुरू किया।

वर्ष 2014 में और फिर 2019 में लोकसभा चुनाव जीतने के बाद, भाजपा की थीम भारतीयता से परिपूर्ण थी जिसमें 'मेक इन इंडिया' से लेकर 'बाई इन इंडिया' और 'ट्रैवल इन इंडिया' जैसी चीजें भी शामिल थीं। फिर भी, ऐपल से जुड़ी रोजगार सृजन की कहानी बताती है कि निवेशकों का स्वागत किए जाने की रवायत पहले भी कुछ तरीके से कायम रही है, हालांकि वैश्विक निवेशकों के लिए यह, सभी क्षेत्रों में समान रूप से नहीं रहा है।

वर्ष 2014 में भाजपा के प्रधानमंत्री पद के उम्मीदवार रहे नरेंद्र मोदी, निवेशकों का स्वागत जमकर किए जाने के सिद्धांत के पीछे की प्रेरक शक्ति थे और उन्होंने इस साल की शुरुआत में उत्तर प्रदेश के वैश्विक निवेशक सम्मेलन में भी यह बात दोहराई थी। प्रधानमंत्री ने फरवरी में कहा था कि उत्तर प्रदेश में 'डबल इंजन' वाली सरकार के सात वर्षों के दौरान लालफीताशाही की संस्कृति अब निवेशकों की सुगमता के लिए उनका खुलकर स्वागत किए जाने वाली संस्कृति में बदल गई है।

सामयिक सवाल
निवेदिता मुखर्जी

पिछले साल भी जी20 व्यापार और निवेश से जुड़ी एक वर्चुअल मंत्रिस्तरीय बैठक में मोदी ने निवेशकों का स्वागत करने पर जोर दिया। वैश्विक स्तर पर उन्होंने संदेश दिया था कि भारत लालफीताशाही के दौर के बाद अब निवेशकों को आमंत्रित करने की दिशा में आगे बढ़ चुका है और इसने 2014 से ही देश में 'बिना किसी बाधा के प्रत्यक्ष विदेशी निवेश' के अनुकूल माहौल बनाया है। उन्होंने इसी बैठक में यह भी बताया कि कैसे 'मेक इन इंडिया' और 'आत्मनिर्भर भारत' ने विनिर्माण को प्रोत्साहित किया है। इसके साथ ही उन्होंने जी20 के सदस्य देशों से भविष्य की चुनौतियों का सामना करने के लिए तैयार रहने के मकसद से एक समावेशी वैश्विक वैल्यू चेन बनाने का आग्रह किया है।

विदेशी निवेशकों का खुले दिल से स्वागत करने और 'मेक इन इंडिया' के लिए प्रोत्साहन देने जैसे कदमों के चलते ही ऐपल उत्पादों के निर्माण के साथ ही नौकरियों के मौके बने हैं। लेकिन यह प्रारूप सभी मामलों में कारगर नहीं हो सकता है। बेहतर नतीजे दिखने और गुणवत्ता पूर्ण नौकरियों के मौके तैयार करने के लिए निवेशकों को आमंत्रित करना जरूरी है और इसके लिए सभी क्षेत्रों में बिना किसी आपत्ति और विरोध के विदेशी निवेश नियमों में ढील देना ही रास्ता होना चाहिए।

भारत जैसे-जैसे अपने विनिर्माण को अगले स्तर पर ले जा रहा है और इलेक्ट्रिक वाहन (ईवी), अक्षय ऊर्जा, सेमीकंडक्टर और उच्च-स्तरीय संचार उपकरणों जैसे क्षेत्रों में आक्रामकता से आगे बढ़ रहा है, ऐसे में नीति निर्माताओं को बिना किसी आपत्ति वाली एफडीआई नीति पर विचार करना चाहिए। विचार यह होना चाहिए कि घरेलू स्तर से जुड़ी जटिल नीति में पड़े बिना बहुराष्ट्रीय कंपनियों को लाने की पहल की जाए।

हाल के उदाहरणों से पता चलता है कि भारत की कंपनियों को सेमीकंडक्टर उपकरणों का निर्माण करने के लिए साझेदारी करने की आवश्यकता है क्योंकि इस प्रक्रिया में तकनीकी जानकारी शामिल होती है। टाटा समूह का संयुक्त उद्यम ताइवान की पावरचिप सेमीकंडक्टर मैन्युफैक्चरिंग कॉर्पोरेशन (पीएसएमसी) के साथ है और यह वर्ष 2026 के अंत तक सेमीकॉन चिप का उत्पादन शुरू करेगी।

सेमीकॉन उपकरण आमतौर पर नैनोफैब्रिकेशन प्रक्रिया के जरिये बनाए जाते हैं जो प्रक्रिया शुद्ध क्रिस्टल सिलिकन से बने सब्सट्रेट की सतह पर होती है।

1970 के दशक में अमेरिका की एक प्रमुख इलेक्ट्रॉनिक्स कंपनी रेडियो कॉर्पोरेशन ऑफ अमेरिका (आरसीए) की शुरुआत के बाद ताइवान ने इस उद्योग में शुरुआती बढ़त हासिल की थी और यह सेमीकंडक्टर तकनीक देने के लिए राजी था जो इस क्षेत्र में सबसे बड़ा था। ताइवान सेमीकंडक्टर मैन्युफैक्चरिंग कंपनी (टीएसएमसी) की सेमीकॉन चिप निर्माण के वैश्विक बाजार में हिस्सेदारी कम से कम आधी है।

अक्षय ऊर्जा के मामले में भी, भारत बिना साझेदारी और गठबंधन के नहीं चल सकता है। उदाहरण के तौर पर अंतरराष्ट्रीय ऊर्जा एजेंसी (आईईए) के आंकड़ों के अनुसार, चीन का दबदबा सौर पैनलों और उनके घटकों के उत्पादन में है और सिर्फ इस देश से ही 75-80 प्रतिशत वैश्विक उत्पादन होता है जिनमें सौर सेल भी शामिल हैं। ऐसे समय में जब भारत का जोर अक्षय ऊर्जा पर बढ़ रहा है तब इसमें कोई हैरानी की बात नहीं है कि संयुक्त राष्ट्र व्यापार एवं विकास सम्मेलन की हालिया रिपोर्ट में कहा गया है कि भारत की चीन और यूरोपीय संघ यानी प्रत्येक पर व्यापार निर्भरता वर्ष 2023 में 1.2 प्रतिशत तक बढ़ी है। लेकिन इतना काफी नहीं है। ये आंकड़े और भी अधिक बढ़ने चाहिए, चाहे यह ताइवान, चीन या किसी अन्य देश के साथ व्यापार हो और चाहे वह ईवी, सौर पैनल, सेमीकॉन चिप या मोबाइल फोन के लिए ही क्यों न हो।

ऐपल को देश में सबसे ज्यादा रोजगार देने वाला तंत्र तैयार करने से पहले भारत में सुगम नियामकीय माहौल के लिए वर्षों इंतजार करना पड़ा। भारत को विनिर्माण एवं सेवा क्षेत्र दोनों में कई और रोजगार के मौके तैयार करने वालों की आवश्यकता है। इसके लिए सभी निवेशकों के लिए बिना किसी बाधा और आपत्ति के आमंत्रित करने की राह तैयार की जानी चाहिए।

आपका पक्ष

विश्व व्यापार संगठन की असफलता

लेख 'विश्व व्यापार संगठन का क्या होगा भविष्य' वर्तमान परिस्थितियों में विश्व व्यापार संगठन के कार्यक्षेत्र, विकसित देशों विशेषकर अमेरिका और चीन के प्रति झुकाव और विकासशील देशों के प्रति दुराग्रही रवैये को स्पष्ट करता है। आज अमेरिका, चीन और यूरोपीय देशों में संरक्षणवाद पनप रहा है और विस्तारवाद भी पैर पसारने लगा है। वैश्विक कारोबारी और राजनीतिक परिदृश्य अशांत है और इसके पीछे वे ही महाशक्तियां हैं जिनकी संयुक्त राष्ट्र और सुरक्षा परिषद में स्थायी सदस्यता है और वर्चस्व है। सवाल यह है कि क्या हम संयुक्त राष्ट्र, विश्व व्यापार संगठन और यूएन के अन्य संगठनों से किसी समाधान की अपेक्षा कर सकते हैं? हाल में कोरोना काल के तीन वर्ष के दौरान करोड़ों लोग कोरोनावायरस से ग्रस्त हुए और लाखों लोगों की इलाज और दवाओं के अभाव में मृत्यु हो गई। बहुत सारे देशों की अर्थव्यवस्थाएं

टेक्नोलॉजी ही वैश्विक व्यापार और वैश्वीकरण की दिशा मोड़ रही है। ऐसे में विश्व व्यापार संगठन की कोई भूमिका नहीं रह गई है

चौपट हो गईं। अमेरिका, चीन और यूरोप के पास कोरोना के इलाज की दवाओं और वैक्सीन के पेटेंट थे और वहां की फार्मा कंपनियों ने कई अरब डॉलर का मुनाफा कमाया। लेकिन भारत, दक्षिण अफ्रीका, ब्राजील जैसे देशों ने विश्व व्यापार संगठन से अपने देशों में पेटेंट मुक्त दवाओं और वैक्सीन के उत्पादन का निवेदन किया जिससे अपने देशों और सभी देशों में कोरोना के इलाज की दवाओं और वैक्सीन की आपूर्ति की जा सके। विश्व व्यापार संगठन और विश्व स्वास्थ्य संगठन ने इसे लेकर कोई संवेदनशीलता नहीं दिखाई। लेख में जो निष्कर्ष निकाले गए हैं वह सही हैं। वैश्वीकरण की रफ्तार धीमी है और द्विपक्षीय समझौतों से ही विदेश व्यापार में स्थायित्व आ सकता है। टेक्नोलॉजी ही वैश्विक व्यापार और वैश्वीकरण की दिशा मोड़ रही है। ऐसे में विश्व व्यापार संगठन की कोई भूमिका नहीं रह गई है। जहां तक भारत में औद्योगीकरण के बारे में कहा गया है तो अभी शुरुआत है, 140 करोड़ की जनसंख्या भी वैश्विक व्यापार की दिशा बदलने में सक्षम है।

विनोद जौहरी, दिल्ली

विश्व स्वास्थ्य दिवस का औचित्य

विश्व में स्वास्थ्य सेवाओं, वैश्विक महामारियों से बचाव और स्वास्थ्य सुविधाओं में सुधार के लिए विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यूएचओ) की स्थापना 7 अप्रैल, 1948 को हुई थी। इसी दिन को विश्व स्वास्थ्य दिवस के रूप में भी मनाया जाता है। इसका मुख्य उद्देश्य लोगों को स्वास्थ्य के प्रति जागरूक करना है। कोविड-19 महामारी के प्रति डब्ल्यूएचओ की भूमिका निराशाजनक रही। बीते समय में डब्ल्यूएचओ क्यों नाकाम रहा, इसने क्या किया और क्या नहीं, इसकी चिंता को छोड़कर अब कोविड 19 से सारी दुनिया को सबक लेते हुए डब्ल्यूएचओ की कमियों और कमजोरियों को दूर करने के उपाय गंभीरता से करने चाहिए। विश्व स्वास्थ्य दिवस 2024 का थीम 'मेरा स्वास्थ्य, मेरा अधिकार' है। देश में डॉक्टरों के साथ सरकारी स्वास्थ्य केंद्रों और अस्पतालों की भी कमी है। डॉक्टरों की कमी को पूरा करने के लिए आयुर्वेदिक चिकित्सा को बढ़ावा दिया जाना चाहिए।

राजेश कुमार चौहान, जालंधर

पाठक अपनी राय हमें इस पते पर भेज सकते हैं : संपादक, बिज़नेस स्टैंडर्ड, 4, बहादुर शाह जफर मार्ग, नई दिल्ली 110002. आप हमें ईमेल भी कर सकते हैं : lettershindi@bsmail.in पत्र/ईमेल में अपना डाक पता और टेलीफोन नंबर अवश्य लिखें।

देश-दुनिया

फोटो - पीटीआई

भारतीय वायुसेना ने उन्नाव में आगरा-लखनऊ एक्सप्रेसवे पर रविवार को 'गगन शक्ति 2024' अभ्यास के तहत लड़ाकू विमान सुखोई के साथ कई विमानों की आपातकालीन लैंडिंग कराई।

विचार

नवभारत टाइम्स

नवभारत टाइम्स । नई दिल्ली। सोमवार, 8 अप्रैल 2024

भीड़ की अराजकता

पश्चिम बंगाल के ईस्ट मेदिनीपुर इलाके में शनिवार तड़के NIA अधिकारियों पर हुआ भीड़ का हमला बताता है कि हमारे प्रशासनिक और राजनीतिक तंत्र ने पिछले अनुभव से कोई सबक नहीं लिया है। इस घटना ने इसी जनवरी में हुए संदेशखाली प्रकरण की याद ताजा कर दी है, जिसमें भीड़ ने ED (प्रवर्तन निदेशालय) की टीम को निशाना बनाया था। एक बार फिर दोनों पक्षों की ओर से राजनीतिक बयानबाजी का सिलसिला शुरू हो गया है, जो पूरे मामले की निष्पक्ष जांच की संभावना को धूमिल बनाता है।

ED के बाद NIA टीम पर हमला

हाईकोर्ट का निर्देश | ऐसे में यह ज्यादा जरूरी हो जाता है कि राजनीतिक बयानों से हटकर पहले इस मामले से जुड़े ठोस तथ्यों पर गौर कर लिया जाए। पहली बात, इस मामले की जांच NIA कोलकाता हाईकोर्ट के निर्देश पर कर रहा है। दूसरी बात, मामला एक बम ब्लास्ट से जुड़ा है, जो दिसंबर 2022 में हुआ था। तीसरी, घटना भले दो साल पहले की हो, उसकी जांच हाईकोर्ट के निर्देश पर NIA को बाद में सौंपी गई। चौथी, इन आरोपियों को पहले भी NIA की तरफ से समन किया गया था, जिसे इन लोगों ने अनदेखा कर दिया था। पांचवीं और आखिरी बात यह कि NIA की टीम उपयुक्त वारंट के साथ गई थी।

संदेशखाली का अनुभव | किसी राज्य में सेंट्रल एजेंसी से जुड़े अधिकारियों के कामकाज में इस तरह बाधा डाला जाना बेहद खतरनाक और नुकसानदेह है। संदेशखाली वाले मामले में भी ऐसा ही हुआ था। हालांकि बाद में मुख्य अभियुक्त गिरफ्तार हुआ जो तृणमूल कांग्रेस का स्थानीय दबंग नेता माना जाता था। पार्टी ने उसे निलंबित भी कर दिया। लेकिन उस घटना ने प्रदेश में कानून-व्यवस्था की स्थिति को लेकर गंभीर सवाल खड़े किए थे।

CM का रुख | हैरत की बात है कि पिछले अनुभव के बावजूद खुद मुख्यमंत्री ममता बनर्जी ने भी परोक्ष रूप से NIA की कार्रवाई पर ही सवाल उठाया है। तृणमूल से जुड़े कई अन्य नेताओं ने भी आरोप लगाया है कि BJP, तृणमूल कांग्रेस के स्थानीय नेताओं में डर बैठाना चाहती है। उनका कहना है कि इस तरह से वह टीम भेजकर आरोपियों को पकड़ने का मकसद यही है।

जल्दबाजी ठीक नहीं | इस खास मामले में प्राथमिक सूचनाओं के आधार पर निष्कर्ष निकालने की जल्दबाजी न की जाए तो भी यह साफ है कि चुनावी माहौल में अगर जांच एजेंसियां किसी एक पक्ष के खिलाफ कार्रवाई करती नजर आती हैं तो उनकी निष्पक्षता पर सवाल उठने के आसार होते हैं।

कानूनी प्रक्रिया का पालन | ऐसे में उनकी भूमिका बेहद महत्वपूर्ण हो जाती है। कानून की तय प्रक्रिया का उन्हें ख्याल रखना चाहिए। कारण यह है कि चुनावी माहौल में उनकी निष्पक्षता पर सवाल उठने से न केवल उनकी छवि पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है बल्कि देश में चुनावी प्रक्रिया की विश्वसनीयता पर भी आंच आने का डर रहता है।

चक्र-व्यू

नेग-देग का मौसम

राहुल पाण्डेय

गरमी चढ़ रही है और सहालग भी। अवध में इसे सहालग कहते हैं तो वेस्ट यूपी में सायों का चढ़ना। शुभ से ज्यादा लाभ की प्रबल आकांक्षा में कार्ड के कार्ड बंट रहे हैं। जहां नहीं बंट रहे, वहां वट्सऐप या टेलीग्राम का लाभ लिया जा रहा है। नए दामादों के लिए फोन तो 'पुराने चावलों' के लिए मिस कॉल ही बहुत है। थोड़ी अगर लड़की की हो तो वट्सऐप मेसेज भी काफी है, जिसके मिलने के बाद लोग सीधा और न्योता लेकर पहुंच ही जाते हैं। मगर लड़के के गठजोड़ में तो कार्ड चाहिए और बाकायदा मान्य के हाथ से ही चाहिए। लेकिन इन सबसे पहले सबसे गंभीर मनन यही तारा है कि इस बार किसे बुलाएं और किसे बख्शें। पिछली बार किसी के फूफा ने पनीर के लिए बवाल काटा था तो किसी के मौसा ने पापड़ पर रायता बिखेरा था। मेहमान चाहे जैसे भी हों, पंजीरी की तरह फूं-फां वाले नहीं होने चाहिए कि जहां मुंह खुला, फर्र-फर्र उड़ने लगे!

ऐसा नहीं कि ऐसी लिस्ट पर माथापोड़ी सिर्फ मेजबान के घर में ही चल रही है। अकल का घोड़ा तो मेहमानगण भी दौड़ा रहे हैं। सारे ऑप्शन चेक किए जा रहे हैं। किसके यहां खुद जाना है, किसके यहां चिंटू को भेजना है। चिकी कहां का न्योता निपटा सकती है। कहां अक्सर सिर्फ फोन पर मांगी जा सकती है और कहां वट्सऐप पर ही एक दुखी स्माइली के साथ 'आ नहीं पा रहे, बुरे फंस गए हैं', लिखने से काम बन सकता है। सबसे खतरनाक तो वह डायरी है, जिसमें सबके न्योते का हिसाब लिखा है। किसने चिंटू के बर्थडे पर 501 रुपये दिए थे, और चिंकी के बर्थडे पर किसने 101 रुपये व पत्ता झाड़ा था, सब दर्ज है। लड़के की शादी में क्या देना है से ज्यादा क्या नहीं देना है- इस पर आधी-आधी रात तक तरल-गरल शास्त्रार्थ हो रहे हैं। लड़की की शादी है, तब तो जाना और देना जरूरी है। इसी बीच होम मिनिस्टर अड़ गई हैं कि फलाने ने तो हमारी बड़की की शादी में कुछ नहीं दिया था, तो हम क्यों दें?

अम्मा के पुराने बक्से में सामान टटोलते हुए मुझे भी एक डायरी मिली। उसमें सन 1976 से आए-गए न्योतों का हिसाब है। अली हुसैन की शादी में कितना दिया था, तो अली हुसैन ने हमारे यहां कितना दिया था। कादीपुर से लेकर शादीपुर वालों का सारा नेग-देग दर्ज है। मौसी के यहां भी कुछ ऐसी ही डायरी दिखी। कोशिश तो मेरे घर में भी ऐसी डायरी बनाने की हुई थी, मगर मेरी क्रांति की ज्वाला ने उसे बड़ी ही शांति से फूंक दिया। कार्ड तो मेरे पास भी आए हैं। सबसे ऊपर एक मंत्री जी हैं, फिर एक संतरी जी हैं। सबसे नीचे मेरे पान वाले हैं। तारीख सबकी एक ही है। मंत्री-संतरी के यहां तो वैसे ही सब फूं-फां वाले पंजीरी प्रसाद आएंगे। लिहाजा मैंने पान वाले की शादी में जाना तय किया है। कम से कम वहां मेरे जैसे पान प्रसाद पांडे ही रहेंगे। हम सब मिलकर कत्थे से शुभ मुहूर्त लिखेंगे, जाफरान और इलायची की खुशबू के साथ।

एकदा

शायरी से भागे भूत

यह तो अब बेहद आम बात है कि शायरों के शायर फिराक गोरखपुरी यानी रघुपति सहाय फिराक काफी मजाकिया थे। मुशायरे हों या कोई बौद्धिक बैठकी, उनके मजाक हर किसी को खिलखिलाने पर मजबूर कर दिया करते थे। मगर एक बात और है। फिराक गोरखपुरी को मुशायरों में अपना कलाम पढ़ने से पहले कहानी सुनाने की भी आदत थी। एक बार की बात है, उनके अपने शहर गोरखपुर में एक मुशायरे का आयोजन हुआ। फिराक साहब भी उसमें इलाहाबाद से शिरकत करने पहुंचे। कलाम पेश करने से पहले उन्होंने बनारस की एक कहानी सुनाई। कहानी कुछ यूं थी कि एक मकान था बनारस में, जिसमें कोई रुकता ही नहीं था। कहते थे कि उस मकान पर आसेब का साया है, यानी भूत-प्रेतों का बसेरा। जो भी वह मकान किराए पर लेता, दो-चार दिनों में ही वहां से निकल जाता। फिर एक दिन नए शायर शहर में आए। उन्हें मकान की जरूरत थी। उनको यही भूतिया मकान दिखाया गया। उन्हें मकान पसंद आया, और उन्होंने मकान किराए पर ले लिया। अब सबने समझा कि दो-चार दिन की बात है, उसके बाद नए शायर साहब भी मकान छोड़ने को मजबूर हो ही जाएंगे। लेकिन देखते ही देखते एक साल पूरा होने को आया। सब बड़े हैरान थे कि शायर साहब का मकान छोड़ने का कोई इरादा ही नजर नहीं आ रहा था। किसी ने उन शायर से पूछा कि भाई, क्या हुआ? आपने मकान में कभी कोई भूत-प्रेत नहीं देखा? यहां तो कोई दो-चार दिन से ज्यादा ठहरता ही नहीं था। इस पर शायर बोले, 'मैं जिस रोज आया, उसी रोज भूतों से मुलाकात हुई। मैंने उनको अपने इतने शेर और नज्में सुनाईं कि वे 'उसी रात यहां से दुम दबा कर भाग गए।' यह सुनना था कि महफिल से दाद के साथ यह आवाज भी आने लगी कि शायर तो भूतों के भी उस्ताद ठहरे।

संकलन : जमील गुलरेज

I.N.D.I.A. की एकजुटता में कहीं कमी रह गई है जिसका BJP को मिल सकता है फायदा

क्या साफ हो गई है आम चुनावों की तस्वीर

अवधेश कुमार

लोकसभा चुनाव से ठीक पहले देश की राजनीतिक तस्वीर इतनी स्पष्ट हो चुकी है कि 4 जून के परिणामों को लेकर भविष्यवाणी करना जोखिम भरा नहीं रहा। 2014 और 2019 में BJP की विजय की संभावनाओं को साफ देखते हुए भी ज्यादातर विश्लेषक भविष्यवाणी करने से बच रहे थे। 2024 में यह हिचक खत्म है तो इसके पर्याप्त कारण हैं।

डांवाडोल स्थिति | दो महीने पहले तक प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के नेतृत्व में BJP और NDA को I.N.D.I.A. द्वारा राष्ट्रीय स्तर पर चुनौती मिलने की जो संभावना दिख रही थी वह ज्यादातर राज्यों में समाप्त हो चुकी है। बिहार, दिल्ली, तमिलनाडु और महाराष्ट्र को छोड़ दें तो विपक्षी गठबंधन I.N.D.I.A. कहीं नहीं है। बिहार में नीतीश कुमार के बाहर चले जाने के कारण आधा I.N.D.I.A. ही है। महाराष्ट्र में बचा-खुचा गठबंधन भी डांवाडोल है।

कमजोर हैसियत | विपक्ष की सबसे बड़ी पार्टी होने के बावजूद कांग्रेस गठबंधन की नेतृत्वकर्ता या निर्धारक नहीं बन पाई। वह अन्य दलों की इच्छाओं के अनुरूप सीटें स्वीकारने को विवश है। दूसरी ओर NDA पहले जैसी स्थिति बरकरार रखने के साथ ही आंध्रप्रदेश में तेलुगु देशम और जनसेना तो तमिलनाडु में PMK और तमिल मनीला कांग्रेस जैसी पार्टियों को भी जोड़ने में सफल रहा है। इसका नेतृत्व और नियंत्रण पूरी तरह BJP के हाथों है और नरेंद्र मोदी इसके सर्वमान्य नेता हैं।

NDA का कॉन्फिडेंस | ओडिशा में BJD और पंजाब में अकाली दल के साथ गठबंधन इसलिए नहीं हुआ कि BJP अपनी वर्तमान स्थिति के अनुसार सीटें चाहती है। पंजाब में अकाली दल पहले की मानसिकता में उसे छोटी पार्टी मानकर गठबंधन करना चाहता था जबकि BJP बदले हुए माहौल में बड़े भाई की भूमिका चाहती थी। यह आत्मविश्वास से भरी हुई पार्टी का व्यवहार है।

क्या हैं NDA के प्लस पॉइंट
- मोदी का सर्वमान्य नेतृत्व कायम
- गठबंधन में नहीं कोई बिखराव
- हिंदुत्व की जमीन पर चुनौती नहीं

बदला माहौल | पूरे उत्तर, पश्चिम और पूर्वी भारत में ऐसा कोई कारक नहीं है, जिससे मान लिया जाए कि 2019 के मुकाबले BJP की सीटें कम होंगी। ज्यादातर राज्यों में जितनी संख्या में दूसरी पार्टियों से नेता-कार्यकर्ता BJP की ओर आए हैं, उनसे सीटें बढ़ जाने की आधारभूमि बनी है। उदाहरण के लिए, पश्चिम बंगाल का माहौल ढाई महीने में इतना बदल चुका है कि लगभग 30% मुस्लिम मतदाता होने के बावजूद तृणमूल कांग्रेस को कड़ा संघर्ष करना पड़ रहा है। BJP प्रदेश में लोकसभा सीटों की बड़ी संख्या जीत ले तो उसमें आश्चर्य नहीं होना चाहिए।

दक्षिण में भी संभावनाएं | BJP के लिए दक्षिण में आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु और केरल सबसे बड़ी चुनौती रहे हैं। आंध्र में गठबंधन होने के बाद उसकी झोली में कुछ सीटें आना निश्चित है। तमिलनाडु में बड़ी-छोटी पार्टियों के अनेक पूर्व जनप्रतिनिधियों का BJP में आना तथा DMK का सनातन के विरुद्ध तीखा हमला करना बताता है कि माहौल बदला है। BJP वहां से कुछ सीटें निकाल सकती है। केरल में भी सात-आठ सीटों पर वह वाम मोर्चा और लोकतांत्रिक मोर्चे को कड़ी चुनौती दे रही है। कर्नाटक का आंतरिक कलह अवश्य BJP के लिए चुनौती है लेकिन पूरी तस्वीर को देखें तो BJP और NDA की लोकसभा सांसदों की संख्या 2019 के मुकाबले बढ़ने वाली है।

AI Image

वोटर का मानस | ध्यान रहे, 2014 में नरेंद्र मोदी के नेतृत्व में BJP को बहुमत मिलना देश के सामूहिक मानस में आए परिवर्तन की परिणति थी। भारतीय राजनीति में वह पैराडाइम शिफ्ट था, जो पिछले 10 वर्षों में ज्यादा सुदृढ़ और स्थिर हुआ है। धीरे-धीरे आम लोगों के अंदर भी भारत को उसके मूल संस्कारों की दृष्टि से देखने की भावना बलवती हुई है। उन्हें सरकार से सार्वजनिक सेवाएं बेहतर चाहिए, जीविकोपार्जन के अवसर भी चाहिए लेकिन आंतरिक और बाह्य सुरक्षा का वातावरण व सबसे बढ़कर हिंदुत्व और उसके आधार पर एक स्वाभिमानी देश के रूप में भारत भी सिर उठाकर खड़ा दिखना चाहिए।

संघ की भूमिका | संघ परिवार ने लंबे समय से समाज में काम करते हुए धीरे-धीरे मानस बदला है, उससे ऐसा बड़ा सक्रिय वर्ग तैयार हुआ है जो इन दृष्टियों से अलग-अलग माध्यमों और अवसरों से समाज में सतत जागरण करता है। UPA सरकार के विरुद्ध माहौल बनाने में उसकी बड़ी भूमिका थी। नरेंद्र मोदी ने आम आदमी के साथ स्वयं को कनेक्ट करके उसे जबरदस्त राजनीतिक लाभ में परिणत किया।

प्राण प्रतिष्ठा का प्रभाव | राम मंदिर निर्माण और 22 जनवरी को रामलला की प्राण प्रतिष्ठा ने पूरे देश को एक साथ खड़ा किया है। हाल में संपन्न नागपुर की प्रतिनिधि सभा बैठक में संघ द्वारा दिए गए विवरण के अनुसार राम लला की प्राण प्रतिष्ठा के पूर्व 19 करोड़ 38 लाख परिवारों तक पूजित अक्षत पहुंचाया गया और 22 जनवरी को पांच लाख 60 हजार स्थानों पर 9.85 लाख कार्यक्रम हुए। कल्पना कर सकते हैं कि इससे कितना व्यापक जन समुदाय जुड़ा। आज देश में किसी भी संगठन की इतने बड़े कार्यक्रम को इतने सफलतापूर्वक संपन्न कराने की शक्ति नहीं है। चूंकि इस समय लोगों के पास BJP और प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के ही श्रेष्ठ विकल्प हैं, इसलिए अनेक वाजिब असंतोष और प्रश्न होते हुए भी वे सामान्यतःउनके विरुद्ध जाकर मतदान नहीं कर सकते।

एकमात्र विकल्प | विरोधी दलों के अंदर इस बदले हुए भारत के सामूहिक मानस की अभी तक समझ नहीं है और इसी कारण वह अपनी भूमिका से उन्हें BJP के साथ खड़े होने का ही विकल्प देते हैं। उदाहरण के लिए, नागरिकता संशोधन कानून (CAA) का विरोध करना, संदेशखाली जैसी घटना पर चुप्पी बनाए रखना और रामलला की प्राण प्रतिष्ठा का निमंत्रण ठुकराना आम जनता को यही संदेश देता है कि इन मसलों पर आज भी अकेली BJP ही उनके साथ है। BJP के सामने एकमात्र चुनौती अपने लोगों को मतदान केंद्र तक पहुंचा देने की है। अगर यह भाव पैदा हो गया कि वे जीत ही रहे हैं तो लोगों की सक्रियता कम हो सकती है।

(लेखक वरिष्ठ पत्रकार और विचारक हैं)

शहर के पुराने इलाके में कभी की है रिक्शे की सवारी

AI Image

जीवन आनंद

साइकल की घंटी नई होने पर बहुत तेज आवाज करती है, कान के पर्दे पर लगता है कि चट से आकर पड़ रही है - ट्रिंग, ट्रिंग। जब यह घंटी किसी गाड़ी का हॉर्न बन जाती है, तब लगता है कि पर्दा फाड़कर ही दम लेगी। लेकिन, रिक्शे पर लगी यही घंटी बड़ी सुरीली लगती। इसे बनाया ही इतने जुगाड़ से जाता था। घंटी से एक पतला तार नीचे लाकर आगे वाले पहिये के रिम के पास बांध दिया जाता। उससे रबड़ का एक छोटा टुकड़ा जुड़ा होता। घंटी बजाने पर यह टुकड़ा रिम की तीलियों से टकराता और संगीत जैसी जो आवाज निकलती थी, वह न तो कानों को चुभती और न दर्द देती।

यहां रिक्शा का मतलब है रिक्शा। ई-रिक्शा की बात नहीं हो रही और न ही ऑटो रिक्शा की। कई जगह लोग ऑटो को भी रिक्शा ही बुलाते हैं, तो उनके लिए खासतौर पर कि नहीं, यह ऑटो नहीं है। रिक्शा जो चलता है पैडल से। आगे की सीट पर बैठा ड्राइवर पैडल मारकर जिसे खींचता है, वह वाला रिक्शा। इसकी मधुर घंटी की तरह अब यह रिक्शा भी बहुत कम दिखता है। इलेक्ट्रिक, CNG और पेट्रोल इंजन ने पैडल का काम करीब-करीब खत्म कर दिया। जिन चौराहों पर कभी इनका एकछत्र राज हुआ करता था, वहां अब ई-रिक्शा वालों का जमावड़ा दिखता है। लेकिन, जो रिक्शे बचे हैं, उनकी यात्रा अब भी बेहद सुखद लगती है, आनंद देने वाली।

इन पर बैठकर केवल मंजिल तक ही नहीं पहुंचते, बल्कि पुरानी यादों के सफर पर भी निकल सकते हैं। इन पर बैठने का अहसास ऐसा मानो बीते वक्त में पहुंच चुके हों। जब सड़कों पर इतनी भीड़ न थी और न सभी को इतनी जल्दी। रिक्शेवाला एक लय में पैडल मारते हुए धीमे-धीमे आगे बढ़ता है और पैडल के हर घुमाव के साथ कई स्मृति खुलती जाती है। चढ़ान पर आकर उसका रिक्शे से उतर जाना, ढलान पर पैडल मारना बंद कर देना। आगे बढ़ना और साथ में हाथ के इशारे से दूसरों को भी रास्ता देते चलना।

रिक्शा न तो इतना धीमा होता है कि देर हो जाए और न इतना तेज कि आसपास के लोग और चीजें छूटती चली जाएं। बिल्कुल परफेक्ट होती है उसकी गति। उसकी सवारी करते हुए भी आप अपने आसपास का हिस्सा होते हैं। सड़क पर पैदल चल रहे लोग, पटरियों पर खड़े ठेले-खोमचे वाले और उन पटरियों के पार खुली दुकानें - इन सभी से मिलते-मिलाते ले जाता है रिक्शा। इसमें कोई पर्दा, कोई दरवाजा, कोई खिड़की नहीं होती, जो अपने यात्री को बाकी दुनिया से अलग कर दे। यह दुनिया को साथ लेकर चलना सिखाता है। इस पर बैठकर भी बाकी लोगों को नहीं भूलते आप।

रिक्शा धीमा जरूर है, लेकिन निरंतरता है इसमें। इसके पहिये जल्दी थमते नहीं। खरगोश और कछुए के बीच रेस वाली जो कहानी बचपन से सुनाई जा रही है, उसका कछुआ समझ लीजिए इसे। रिक्शे को रास्ता बनाना आता है। अडजस्ट करना जानता है यह। जिन राहों पर आकर ऑटो और ई-रिक्शा भी हाथ खड़े कर देते हैं, उन पर बहुत आराम से चल पड़ता है रिक्शा।

यह ऑटो की तरह आवारा नहीं होता, जो पूरे शहर में दौड़ता फिरे, हाइवे और चौड़े-चौड़े रास्तों पर भटकता रहे। इसे अपनी हद पता होती है। इसे पता है अपने दोस्त चौक-चौराहों, गली-कूचों के बारे में। एक रिक्शा हर दिन, बार-बार बस अपने उन्हीं दोस्तों से मिलता-जुलता रहता है। ऐसे में किसी नए शहर से दोस्ती करने के लिए रिक्शे से बेहतर कोई नहीं।

इसकी सवारी से गद्दी पर टिके रहने का शऊर भी आ जाता है। एक सलीका होता है इस पर बैठने का। अगर तमीज से बाहर निकले, तो गद्दी से सरक जाएंगे। यह तमीजदार बनाने के साथ-साथ इज्जत करना भी सिखाता है। भेदभाव के लिए जगह नहीं होती इसमें। जिस ऊंचाई पर सवारी बैठती है, उसी ऊंचाई पर पैडल मारने वाला भी। दोनों के बीच कोई ओट नहीं होती।

सड़कें बदलीं, उन पर चलने वाले बदले, लेकिन रिक्शा ने किसी तरह अपने को बचाए रखा है। इसकी सबसे बड़ी वजह यही है कि इनकी जगह कोई और नहीं ले सकता। पुराने लखनऊ की गलियों, पुरानी दिल्ली या बनारस के चौक को महसूस करने के लिए क्या रिक्शे का कोई विकल्प मिल सकता है? जवाब देने के लिए कम से कम एक अनुभव होना चाहिए आपके पास।

शेयर करें अपने अनुभव
जीवन की दिनचर्या के अनुभवों में आप कैसे आनंद महसूस करते हैं, हमें बताएं **nbtreader@timesgroup.com** पर, और सब्जेक्ट में लिखें- **'जीवन आनंद'**

THE SPEAKING TREE
और पढ़ने के लिए देखें
hindi.speakingtree.in

प्रकृति और स्वयं को जानेंगे, तभी जीवन में आनंद आएगा

संजय तेवतिया

प्रकृति ही जीवन है। यही हमें भोजन, पानी, सांस लेने के लिए वायु और रहने के लिए जगह देती है। इसके साथ छेड़छाड़ विनाश का कारण बनता है। आधुनिकता के नाम पर जंगलों की कटाई, पहाड़ों को तोड़कर सड़क, होटल, मकान बनाना, कंक्रीट के बड़े-बड़े जंगल खड़े कर दिए जा रहे हैं। इनका पक्ष लेने के लिए आधुनिकता के ढेरों आध्यात्मिक गुरु मार्केट में आ गए हैं, जो यह कहते हैं कि जो कुछ भी है, सब सुख के लिए है। सुख की इस कभी न बुझने वाली प्यास के लिए इंसान प्रकृति से और छेड़खानी में लग जाता है। प्रकृति उसे बार-बार चेतावनी देती है, कभी भूकंप आ जाता है तो कभी बाढ़। कुछ दिन इंसान शांत बैठता है, मगर फिर से आधुनिकता की इस अंधी दौड़ में दौड़ने लग जाता है।

प्रकृति को भूलना आधुनिकता नहीं है। इसके अभाव को सहज रूप से महसूस न करने वाला मन बीमार होता है। आज जनसंख्या का एक बड़ा हिस्सा बीमार मन के लोगों का है। व्यक्ति जितना सृष्टि से दूर होता जा रहा है, शारीरिक, मानसिक और आत्मिक रूप से उतना ही अस्वस्थ हो रहा है। इससे उबरने के लिए वह शराब, नशे और दूसरे अप्राकृतिक सुखों का सहारा लेने लगता है। होना तो यह था कि प्रकृति की गोद में बैठकर अपनी आत्मा को टटोलते। स्वयं से परिचित होते तो परमात्मा को पाते। पर हुआ यह कि अप्राकृतिक साधनों की ओर और झुकते चले गए। स्वयं से इतना अधिक अपरिचय ही मनुष्य के पतन का सबसे बड़ा कारण बन रहा है। और यह अपरिचय क्यों है? क्योंकि मनुष्य लगातार प्रकृति से दूर होता जा रहा है।

आधुनिकता की अंधी दौड़ में शामिल व्यक्ति पृथ्वी की धूल यानी सृष्टि के मूल से अलग होता जाता है। ऐसा व्यक्ति निपट अकेला होता है। उसके आसपास जो लोग होते हैं, वस्तुएं होती हैं, वह उसी नकली सुख को पोषित करती हैं, जिसमें सृष्टि के तत्व न के बराबर होते हैं। ऐसी आधुनिकता सृष्टि से अलगाव ला देती है। प्रकृति से इस प्रकार के अलगाव के कारण ही व्यक्ति पाप के ऐसे चक्र में फंस जाता है, जिससे बाहर निकलना लगभग असंभव होता है। कृत्रिमता से आनंद का समझौता नहीं होता। अध्यात्म के सवालों के जवाब भी कृत्रिमता से नहीं मिलते। आत्मा भी इस नकली आनंद के बोझ से कहीं गहरे दब जाती है।

आत्मा की सुनें या आनंद की? आधुनिकता की दौड़ में पागलों की तरह भाग रहे लोग आनंद की सुनते हैं। आनंद चूंकि नकली है, इसलिए वह आगे बढ़ने के लिए तरह-तरह के पाखंड मांगता है। कुछ लोग भंडारा करके फोटो खिंचाते हैं और उसे अखबार में छपवाते हैं। इसमें उन्हें आनंद तो महसूस होता है, पर क्या वो सच्चा आनंद है? कुछ लोग कार या मोटरसाइकिल उठाकर पहाड़ों की ओर भागते हैं, और वहां घर से भी ज्यादा अव्यवस्थित जीवन जीते हैं। घर में तो हम कूड़ा-कचरा कूड़ेदान में फेंकते हैं, मगर पहाड़ों में सब कुछ पहाड़ों में ही फेंककर चले आते हैं। जब वापस घर पहुंचते हैं तो पाते हैं कि मन तो वैसा ही विचलित है, जैसा कि जाने से पहले था। आनंद तो मिला ही नहीं। आनंद क्यों नहीं मिला? क्योंकि जिस प्रकृति की गोद में बैठकर हमें अध्यात्म का आनंद लेना था, उस गोद में हम कचरा डाल आए हैं क्योंकि वही हमारी आधुनिकता है। ऐसी आधुनिकता आनंद कभी नहीं देती है। वह सिर्फ दुख देती है, जिसे व्यक्ति सुख समझकर बैठा है।

Gen Z पर स्मार्टफोन का कितना असर

मृत्युंजय राय

प्यू रिसर्च सेंटर का कहना है कि Gen Z में वे लोग शामिल हैं, जिनका जन्म 1997 से 2012 के बीच हुआ है। यह वह पीढ़ी है, जिसके जीवन में कम उम्र से पहले मोबाइल फोन और बाद में स्मार्टफोन दाखिल हो गया। मोबाइल फोन, स्मार्टफोन और सोशल मीडिया के साये में ज्यादातर जीवन गुजारने वाली यह पीढ़ी अपने से पुरानी पीढ़ियों से कैसे अलग है? और इसका इनके जीवन पर क्या असर हुआ है?

मनोवैज्ञानिक असर | सोशल साइकॉलजिस्ट और न्यू यॉर्क यूनिवर्सिटी के प्रफेसर Jonathan Haidt ने अपनी किताब **'The Anxious Generation: How the Great Rewiring of Childhood Is Causing an Epidemic of Mental Illness,'** में इसका जवाब दिया है। उन्होंने इस किताब में लिखा है कि मनोवैज्ञानिक स्तर पर यह पीढ़ी किस तरह से पिछली पीढ़ियों से अलग है। वह दावा करते हैं कि जिन लोगों का जन्म 1996 के बाद हुआ है, वे अपने से कुछ ही साल पहले पैदा हुए बच्चों से भी मनोवैज्ञानिक स्तर पर अलग हैं।

AI Image

विचार विंडो

तन्हा जीवन | Haidt का कहना है कि Gen Z का 'psychological immune system' कमजोर है। यानी पिछली पीढ़ियों की तुलना में ये बहुत जल्द खीझ जाते हैं। छोटे हादसों, टीजिंग या सामान्य झगड़ों से वे घंटों या कई बार कुछ दिनों तक परेशान रहते हैं। किशोरावस्था या उसके बाद भी इनकी हालत ऐसी ही रहती है। यानी यह एक बेचैन पीढ़ी है।

तकनीक का दोष | Haidt लिखते हैं कि यह पीढ़ी एक मेंटल हेल्थ इमरजेंसी से गुजर रही है। इसके वास्तविक कारण क्या हैं, इसे समझने की कोशिश आने वाले वर्षों में भी होती रहेगी। लेकिन Haidt का दावा है कि इसमें कोई शक नहीं कि यह पीढ़ी संकट के दौर से गुजर रही है। वह बताते हैं कि इस क्राइसिस की वजह सिर्फ टेक्नॉलजिकल नहीं है। इसकी कल्चरल वजहें भी हैं।

लाइक बटन | वह लिखते हैं कि जब इस जेनरेशन के लोग 2009-2010 में स्कूल में थे, तब सोशल मीडिया साइट फेसबुक ने लाइक बटन इंट्रोड्यूस किया। ट्विटर (नया नाम X) ने रीट्वीट का ऑप्शन दिया और स्मार्टफोन में फ्रंट-फेसिंग कैमरा आने लगे, जिसने सेल्फी युग को जन्म दिया। सोशल मीडिया ने इस पीढ़ी को एक ऐसे वर्चुअल वर्ल्ड में धकेल दिया, जहां रियल टाइम रिएक्शंस मिल रहे थे। Haidt का मानना है कि जिस उम्र में इन लोगों का इस तरह की नई टेक्नॉलजी से साबका पड़ा, वह उम्र जेहनी और मनोवैज्ञानिक विकास के लिए अहम होती है।

कैसे हुआ असर | ऐसे शोध हुए हैं, जिनसे यह बात सामने आई है कि जो बच्चे सोशल मीडिया का इस्तेमाल करते हैं, उनके बेचैनी और डिप्रेशन का शिकार होने की आशंका अधिक होती है। Haidt ने अमेरिकी संदर्भों में बताया है कि इससे खासतौर पर लड़कियों, अश्वेत बच्चों और LGBTQ पर कहीं बुरा असर पड़ा है।

सुरक्षा का डर | Gen Z के मानस पर कल्चरल वजहों का भी असर पड़ा है और इसके लिए Haidt इन बच्चों के माता-पिता को भी कसूरवार मानते हैं। पिछली पीढ़ियों के बच्चे जहां स्कूल से अकेले घर लौट आते थे, वहीं इस दौर में माता-पिता उन्हें स्कूल लाते-ले जाते हैं। बेशक, अभिभावकों के मन में बच्चों की सुरक्षा को लेकर जायज चिंताएं हैं। दूसरे, स्कूली शिक्षा की भी टेक्नॉलजी के बिना कल्पना नहीं की जा सकती। ऐसे में Gen Z के बाद वाली पीढ़ियां तो इस पर कहीं अधिक आश्रित हैं।

क्या है रास्ता | Haidt का कहना है कि स्कूल के स्तर पर बच्चों को अधिक खेल-कूद के लिए प्रोत्साहन मिलना चाहिए। उनका यह भी सुझाव है कि एक तय जगह पर स्कूल बच्चों और टीनएजर्स को लकड़ी, हथौड़ा, कील, टायर, पेंट और फैब्रिक देकर उन्हें कुछ क्रिएट करने को कहें। और, यहां भी बड़ों का दखल बिल्कुल न हो। और हां, बच्चे जब ये काम कर रहे हों, तब उनके हाथों में स्मार्टफोन न हो। Haidt ने जो बातें लिखी हैं, उसका एक दूसरा पहलू भी है, जो खासतौर पर विकासशील और गरीब देशों में बच्चों के लिए मददगार साबित हो रहा है। इन देशों में बड़े पैमाने पर बच्चे गुणवत्ता भरी शिक्षा से महरूम हैं और इसमें तकनीक मददगार साबित हो रही है।

करियर या फैमिली?

प्रणव प्रियदर्शी

विनीता नायर लंबे समय से फील्ड में एक्टिव हैं। वह सीमेंस, सैपिएंट और अमेरिकन एक्सप्रेस जैसी कंपनियों में काम करने और अपनी छाप छोड़ने के बाद नेटवेस्ट ग्रुप से जुड़ीं। आजकल वह इस ग्रुप के भारत स्थित ग्लोबल कपैबिलिटी सेंटर में हैं। वह वेल्थ CDIO (इंडिया) की हेड हैं और फाइनैंशल प्लानिंग एंड डिवेलपमेंट प्लैटफॉर्म को भी लीड करती हैं। मगर उनके इस ऊंचे मुकाम से इस बात का अंदाजा नहीं लगाया जा सकता कि वह किस तरह की कठिनाइयों से जूझते हुए यहां तक पहुंची हैं। नेटवेस्ट की ही बात करें तो यहां शुरू में उन्हें एंटरप्राइज इंजीनियरिंग के तहत बिजनेस ऑटोमेशन सर्विसेज की जिम्मेदारी दी गई थी। वहां पहले से बैठे अनुभवी पुरुष सहकर्मियों के बीच अपनी तकनीकी दक्षता को साबित करना आसान नहीं था। लेकिन कॉन्फिडेंस के साथ मॉडेस्टी का सही तालमेल हो तो रोजमर्रा के काम के दौरान आने वाली चुनौतियां भी अवसर में तब्दील होते हुए अपनी महारत साबित करने का मौका दे ही देती हैं। विनीता के साथ भी ऐसा ही हुआ। प्रफेशनल फ्रंट पर उनकी शुरू की गई पहल की कामयाबी ने जल्दी ही उनके आत्मविश्वास को टीम और लीडरशिप के विश्वास में बदलना शुरू कर दिया। विनीता मानती हैं कि महिलाएं आम तौर पर अपनी डोमेस्टिक और प्रफेशनल जिम्मेदारियों को लेकर काफी संजीदा होती हैं। यह उनका सबसे बड़ा प्लस पॉइंट है। लेकिन यही कई स्थितियों में माइनस पॉइंट भी बन जाता है। उनमें से बहुतों को लगने लगता है कि अगर वे करियर में कामयाबी की बुलंदियां छूने लग जाएं तो उनका परिवार उपेक्षित हो जाएगा। लिहाजा, दोनों को साधने का इकलौता उपाय उन्हें यही लगता है कि प्रफेशनल मोर्चे पर तेजी से आगे बढ़ने का प्रयास न किया जाए। वह जोर देकर कहती हैं कि लड़कियों का इस गलत धारणा को चुनौती देकर उसकी असलियत उजागर करना जरूरी है कि एक की कामयाबी हमेशा दूसरे की कीमत पर आती है। सच यह है कि कुदरत ने उन्हें जितना संवेदनशील बनाया है उतनी ही संभावनाएं भी उनमें भरी है। वे संभावनाएं तभी उजागर होंगी जब महिलाएं अपनी क्षमता को महसूस करते हुए उनका इस्तेमाल करेंगी। उन्हें सारी हिचक छोड़कर ऐसा करना चाहिए। यह न केवल उनके बल्कि परिवार, समाज और इंडस्ट्री के भी हक में है।

विनीता नायर

आधी दुनिया

रीडर्स मेल

www.edit.nbt.in

■ रंगों से रंगा मन

25 मार्च को 'जीवन आनंद' कॉलम में 'खुशियों में रंग भरना सिखा जाती है होली' लेख पढ़ा। वाकई बिना रंगों के जीवन बेजान है। अलग-अलग रंगों का हमारे मन पर अलग-अलग असर होता है। रंग बिना तो जीवन सचमुच बेरंग हो जाएगा। एक रंग प्यार का भी होता है, जो दिखता नहीं, पर उसका असर जीवन पर सबसे ज्यादा पड़ता है। होली स्नेह और प्यार का त्योहार है। अगर कहें कि प्रेम के रंग को पटल पर लाने के लिए ही यह त्योहार मनाया जाता है, तो गलत न होगा। प्रेम के अहसास को जीवंत करने के लिए ही होली में इन लाल, हरे, नीले रंगों का इस्तेमाल किया जाता है तो गलत नहीं होगा।

शालिनी गुप्ता, ईमेल से

■ कहीं अनदेखी न हो

18 मार्च को 'जीवन आनंद' कॉलम में 'आंखों पर पड़ा पर्दा कहीं अक्ल पर न पड़ जाए' शीर्षक से प्रकाशित लेख बहुत अच्छा लगा। आंखें जब कुछ देखती हैं, तो देखने के अंदाज और चाहत से उसका महत्व तय होता है। मतलब की बात न हो तो आंखें भी उस चीज को इग्नोर कर देती हैं। लेकिन भीड़ भरे बाजार में हम अपनों को तलाश लेते हैं। दूर से ही उनके चलने के अंदाज से आंखें पहचान लेती हैं। लेकिन कई बार अपना छोटा भाई या बेटा नजर के सामने कुछ करता रहता है, देखते हुए भी आंखें अनजान बन जाती हैं। ऐसा नहीं होना चाहिए।

रॉबिन त्यागी, नोएडा

जीवन आनंद

■ शिकायत तो छोड़ो

गर्मी की शुरुआत हो चुकी है। इसके साथ ही एसी, कूलर, पंखों की डिमांड बढ़ गई है। थोड़ी देर के लिए पावर कटती है तो बहुत जोर से झटका लगता है और बिजली सप्लाई डिपार्टमेंट पर गुस्सा आने लगता है। लेकिन उनके बारे में नहीं सोच पाते हैं, जो मेहनत-मजदूरी करने वाले लोग गर्मी की चिंता किए बिना रात बिता लेते हैं। सुबह उनके चेहरे पर शिकायत नहीं होती कि रात को कितनी गर्मी झेलनी पड़ी। देखा जाए तो हममें से बहुतों ने अपने आपको कमजोर बना लिया है। यही वजह है कि हम हमेशा शिकायतें करते रहते हैं और आनंद कहीं पीछे छूट जाता है।

अमन सिन्हा, ईमेल से

nbtedit@timesgroup.com पर अपनी राय नाम-पते के साथ मेल करें।

अंतिम पत्र

भारत के चुनाव में चीन के दखल देने का आरोप – एक खबर
– इसे ही कहते हैं, बेगानी शादी में अब्दुल्ला दीवाना!

कृष्णकांत यादव

आर.एन.आई. नं. 510/57© सर्वाधिकार सुरक्षित। लिखित अनुमति के बिना संपूर्ण या आंशिक पुनर्प्रकाशन पूर्णतः प्रतिबंधित। स्वत्वाधिकारी बैनेट, कोलमैन एण्ड कम्पनी लिमिटेड के लिए राजीव यादव द्वारा, 7 बहादुरशाह जफर मार्ग, नई दिल्ली-110002 से प्रकाशित तथा **टाइम्स ऑफ इंडिया प्रेस, साइट IV, औद्योगिक क्षेत्र साहिबाबाद** और प्लॉट नंबर 7-8, सेक्टर M-11, ट्रांसपोर्ट हब, इंडस्ट्रियल मॉडल टाउनशिप, मानेसर, हरियाणा से मुद्रित। फोन : 23302000 फैक्सः 23492047, पंजीकृत कार्यालय : दादाभाई नौरोजी रोड, मुंबई-400001। विमान सेवा शुल्क : 1 रु. प्रति कॉपी। नेपाल में कुल मूल्य : सोमवार से शनिवार : नेपाली 5 रु. ; रविवार : नेपाली 6 रु.
संपादक (दिल्ली मार्केट) : आशीष पांडे (इस अंक में प्रकाशित समस्त समाचारों के चयन एवं संपादन हेतु पी.आर.बी. एक्ट के अन्तर्गत उत्तरदायी)